

आज न्याय धुन्ध में है, धर्म वास्तविकता से दूर अपने समूह की सुरक्षा के लिए बुलेटप्रूफ का कार्य करता आया है। दूसरे समूहों को क्षति पहुँचाई है। संसार की विचित्र तस्वीर देखकर कलम एवं कागज के सिवा बात करने वाला कोई नहीं मिला....

जीने का एक मक़सद होना चाहिए; जिसे संसार असार लगा उसने ईश्वर को सम्बल बना लिया–पर मैं धुन्ध से निकल नहीं पाया। इस स्थिति में मेरे चिन्तन में जो आया उसे बेटी काव्य–संग्रह में टूटे–फूटे शब्दों में बद्ध कर दिया....

दूसरे के बेटे से मूल्यांकन किये बिना अपने बेटे को सर्वश्रेष्ठ मान लेना तर्कसंगत नहीं हो सकता। इस धारणा से मुक्त होने के लिए यह जरूरी हो गया है कि आज बच्चों को तथ्यपरक, शोधात्मक, वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत शिक्षा दी जाय ताकि वे स्वयं निर्णय लेने की क्षमता विकसित कर सकें....

अनुमान विश्वास दलगत या लोग कहते हैं। इन धारणाओं से शिक्षा को मुक्त करना होगा, तभी बच्चों की प्रतिभा निखरेगी।

शिशु के मस्तिष्क के पूर्ण विकास के लिए माता–पिता, शिक्षक एवं सरकार सभी का दायित्व है कि अपने कर्त्तव्य का निर्वाहन करें।

सबसे मेरी यही प्रार्थना है !

–पुरुषोत्तम मिश्र 'संकुल'

बेटी (कविता संग्रह)

पुरुषोत्तम मिश्र 'संकुल'



राम गोविन्द चौधरी
मंत्री
बेसिक शिक्षा,
बाल विकास एवं पुष्टाहार विभाग

अ0शा0 पत्रांक......................बे0शि0-बा0वि0पु0/20
☎ कार्यालय : 0522-2238067
सी.एच. : 0522-2213308
आवास : 0522-2237545
82 - मुख्य भवन,
विधान भवन, लखनऊ

दिनांक 31-10-2012

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आप द्वारा स्वरचित काव्य संग्रह "बेटी" का प्रकाशन किया जा रहा है। मुझे यह जानकर भी अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि आप एक भूतपूर्व सैनिक हैं और अपने जीवन के अनेकों वर्ष देश की सेवा में व्यतीत कर अब समाज की सेवा हेतु प्रयासरत हैं। मैं आपके प्रयास की सराहना करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप इसी प्रकार से ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों को अपनी पुस्तक के माध्यम से विभिन्न प्रकार से जागृत करते रहेंगे।

आपके काव्य संग्रह की सफलता हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनायें।

(राम गोविन्द चौधरी)

श्री पुरूषोत्तम मिश्र 'संकुल',
भूतपूर्व सैनिक,
ग्राम–पूरे पयासी,
पोस्ट–मोइया बेगमगंज,
तहसील–सोहावल, जनपद–फैजाबाद।

बेटी

(कविता-संग्रह)

पुरुषोत्तम मिश्र 'संकुल'

प्रकाशक

पुरुषोत्तम मिश्र 'संकुल'

[illegible]

[illegible] 218 [illegible]

प्रकाशक

पुरुषोत्तम मिश्र 'संकुल'

[illegible]

[illegible] 218 [illegible]

मो. [illegible]

मूल्य : 200.00

प्रथम संस्करण : 2013

[illegible]

[illegible] 09839977133

मुद्रक

[illegible]



पूज्य माँ

स्वर्गीय

श्रीमती विद्यावती देवी

के

सादर समर्पित

— श्रद्धांजलि



पुरोवाक्



'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गह्यो नहिं हाथ' महाकवि कबीर की तरह मैं तो यह नहीं कह सकता, पर मेरे पास शिक्षा लगभग नगण्य है। अतः मेरे लेखन में त्रुटियाँ हो सकती हैं। इसके लिए विज्ञजनों से क्षमाप्रार्थी हूँ।

धरती बीज को अपने अन्दर समाये रखती है। जब उपयुक्त वातावरण बन जाता है तब बीज अंकुरित हो जाता है, ठीक इसी प्रकार मानव मन में भाव छिपे होते हैं। जब कोई दृश्य हमारे सामने ऐसा आ जाय जो हमें आत्मविभोर कर दे तब सुप्तस्थ भाव जाग्रत होकर हमारे मन पर प्रभाव डालते हैं। यह प्रभाव हमारे मस्तिष्क में एक कोण बनाता है; परन्तु विचारों के पृथक् होने के कारण हर व्यक्ति का दृष्टिकोण अलग–अलग होगा।

विशाखापट्टनम् की धरती पर 'बेटी' लिखने की मुझे प्रेरणा मिली। कविता से मुझे बचपन से ही प्यार था, परन्तु उसे मूर्त रूप देने का आधार एक छोटी–सी घटना से हुआ, जो वाह्यजगत् की नहीं, अपितु मेरे विचारों की है, जिसका वर्णन करना मैं अप्रासंगिक समझता हूँ। 'बेटी' में मैंने अधिकांश कविताएँ भावोद्रेक में लिखी हैं, इसलिए विचार में तटस्थता का अभाव दिखायी देगा। अपनी लिखी बात को काटा भी है। साहित्य में जिसकी गहरी पैठ है वे इस बात को गम्भीरता से नहीं लेंगे।

'बेटी' में अधिकांश कविताएँ मैंने बच्चों के लिए लिखी हैं। मेरी यही कोशिश है कि बच्चों को मेरी इस रचना से कुछ प्रेरणा मिले। यदि मैं अपने इस प्रयास में सफल होता हूँ तो मैं अपने को धन्य समझूँगा। किसी भी रचना के समय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की इन बातों का विशेष ध्यान रखता हूँ–

'केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।

बच्चों का चारित्रिक, नैतिक व बौद्धिक विकास होना नितान्त आवश्यक है, इसलिए हम सभी का दायित्व बनता है कि हम अपने बच्चों के बौद्धिक विकास में योगदान देते रहें। इसका सबसे उत्तम साधन केवल सत्साहित्य है।

आज का युवा उच्छृंखल व दिग्भ्रमित है। वह जिस स्वातन्त्र्य की बात कर रहा है वह मेरी बुद्धि से परे है। मैं पाश्चात्य जीवन–दर्शन का विरोध नहीं करता परन्तु हमें नकल करते समय बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए। मैं बच्चों पर विचार थोपने के पक्ष में नहीं हूँ; पर उन्हें परिष्कृत ज्ञान दिया जाय जिससे वे स्वयं सही–गलत का निर्णय लेने की क्षमता विकसित कर सकें।

'बेटी' मेरा जीवन दर्शन बन गयी, यद्यपि वात्सल्य–पिपासा शान्त करने हेतु मैंने इसे लिखना आरम्भ किया था। 'बेटी' लिखकर मुझे आत्मसन्तोष मिला, ऐसा लगता है कि जैसे मैंने कोई अच्छा कार्य किया है। मुझे उम्मीद है जो सहृदय हैं, साहित्य में जिनकी रुचि है, उन्हें मेरी 'बेटी' अपनी 'बेटी' लगेगी....

पुरुषोत्तम मिश्र 'संकुल'

समीक्षा–

विविध भावों एवं रिश्तों को उकेरती 'बेटी'



श्री पुरुषोत्तम मिश्र 'संकुल' जी विगत एक वर्ष से दूरभाष पर विशाखापट्टनम् से अपनी कविताएँ मुझे अक्सर सुनाते रहे। मैंने उन्हें कभी देखा और सुना नहीं था। उन्होंने पुस्तक प्रकाशन की इच्छा व्यक्त की तथा मुझसे वे पुस्तक की भूमिका लिखने का आग्रह करते रहे। आज उनका 'बेटी–संग्रह' पढ़कर कुछ लिखकर बेटी को शुभाशीष दे रही हूँ।

आज मानव हृदय वर्तमान परिस्थितियों एवं विभीषिकाओं में करुण क्रन्दन कर रहा है, हम अपने विचारों और संवेदनाओं के अस्तित्व को खोज नहीं पा रहे हैं। इसी कारण वह हमारे नैतिक मूल्यों को विघटनशीलता में नियोजित करता आ रहा है। हम लोकजीवन की ओर मान्यताओं को विस्मृत करके आधुनिकता की ओर बढ़ते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप सुख–शान्ति मृग–मरीचिका बनती जा रही है। इस दिशा में पुरुषोत्तम मिश्र संकुल का 'बेटी' काव्य–संग्रह निश्चित ही ऐसी रचनात्मक पृष्ठभूमि है जिसमें परिवार समाज के लिए अनेक प्रकार की भावनाएँ व्यक्त की गयी हैं। बेटी संग्रह में भारतीय परिवार, राष्ट्र और जीवन की अनेक अनुभूतियों का सुखद परिणाम परिलक्षित होता है। यह सच है कि पुरुषोत्तमजी बहुत पढ़े–लिखे विद्वान् की श्रेणी में नहीं आते, फिर भी उन्हें व्यावहारिक जीवन की विसंगतियाँ घात–प्रतिघात लगाती दृष्टिगत होती हैं और उनके आत्मविश्वास को झकझोरती–सी प्रतीत होती हैं। उनकी कविता, छन्द, व्याकरण, भाषा काव्यशास्त्र की दृष्टि से भले ही परिपुष्ट एवं समृद्ध न हो फिर भी भावना की दृष्टि से उनकी मानस–जाता बेटी कविता रूप में हमारे हृदय पर प्रभाव डालती है। बेटी काव्य–संग्रह की कविताएँ उनके जीवन का अनुभव, प्रयासजन्य नहीं सहज रूप से उद्भूत भाव है। विविध भावों एवं रिश्तों को उकेरती सामान्य मनुष्य की सोच है जो कभी तो नन्हीं बेटी, जो स्कूल से आई है तो कभी लाड़–प्यार तो कभी 'माँ–बेटी' की 'वात्सल्य धारा बनकर कवि के आँगन में बहती रहती है–

'माँ बोली बस बस बेटी
मैं धन्य हुई यह सुनकर
बेटी तू जीवन है मेरा
प्राण से भी है बढ़कर'

नहीं समझ मैं तब पाया था
बेटी ही है एक कहानी
अब जिसकी स्मृति भर देती
नेत्रों में मेरे पानी।

विशाखापट्टनम् की धरती पर बेटी की प्रेरणा पाने वाले कवि पुरुषोत्तम जी की इन कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सरलता है। कवि ने खुली आँखों से प्रकृति के सुन्दर रूप खेत, खलिहान, इन्द्रधनुष, रातरानी, मटर की छीमी, अमियाँ, कोयल, बादल और चाँद, अंकुर, प्रभात, फूल, बसन्त, श्यामा तितली, चींटी आदि कविताओं में उसे अनेक रूपों में चित्रित कर मानवीय तादात्म्य बनाने की चेष्टा की है।

धरती के सुहाग हैं बादल
सृष्टि के श्रृंगार हैं बादल
नवजीवन के उद्गम बादल
वरदान हैं जीवन के बादल।

पर्यावरण के प्रति कवि चिन्तित है–

बढ़ते हुए प्रदूषण से अब
धरती माँ अकुलाती

जंगल काट कर खेत बन रहे
बस्ती बढ़ती जाती।

इस तरह से देखें तो कवि के हृदय में समाज, देश, पर्यावरण, भारतीय संस्कृति के बदलते जीवन–मूल्यों एवं संस्कारों के प्रति गहन चिन्ता का दर्शन अनेक कविताओं में दिखायी पड़ता है साथ ही मानवीय सम्बन्धों में आयी गिरावट भी कवि को यत्र–तत्र झकझोरती है–

टूटते बनते बिगड़ते
नाम के रिश्ते यहाँ हैं
आदमी तो हैं वही
पर आदमियत अब कहाँ है ?

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उनके हृदय में सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागृति के लिए एक छटपटाहट है। बच्चों एवं युवाओं की छिपी हुई प्रतिभाओं को उजागर करने की ललक है। वे अपने हृदय की पीड़ा किसी के सामने नहीं रखते; अपितु अपनी भावाभिव्यक्ति के द्वारा सबको कुछ न कुछ देते रहते हैं।

मैं कहना चाहती हूँ कि पुरुषोत्तम जी का काव्य 'बेटी' शीर्षक सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है, जो बेटी के हर रूप का सरलता से चित्रण करता है। नारी के प्रति उनके हृदय में सच्ची भावना का निवास कह सकते हैं। वे नारी के हर रूप का चित्रांकन सहजता से करते हैं।

कभी उनका भक्त मन ईश्वर में लीन हो जाता है तो कभी वे अपने हृदय के अन्तःस्थल में छिपे प्यार को उजागर कर बैठते हैं और 'मुहब्बत' को ही जगत् का सच मान बैठते हैं। कहीं पर–

अगर तुम पास में होती
बात कुछ और ही होती

कहकर स्मृतियों में खो जाते हैं।

सामाजिक बुराइयों पर भी कवि मुखर हो जाता है–

दहेज एक अभिशाप है
समाज में कोढ़ है पाप है
अनाचार बढ़ने वाला है
मानवता पर दाग है।

इसके साथ ही कृतिकार लोकतन्त्र पर प्रहार करता है–

बिल्ली बोली लोकतन्त्र में
चूहे भी मुँह खोल रहे हैं
जिनको हम कल तक खाती थी
हमको ही विष घोल रहे हैं।

इस प्रकार इन कविताओं में कहीं बसन्ती बयार की सोंधी महक कहीं पतझड़ी उदासी तो कहीं विविध इन्द्रधनुषी आयाम दिखायी पड़ता है; जिसमें भारतीय ग्राम्य जीवन परम्परा के अनेक रंग दिखाने की भरपूर कसक है। आज के परिवेश में हो रही अमानवीय कारस्तानियों की तस्वीर भी दिखायी पड़ती है।

सभी कविताएँ स्वतः स्फूर्त एवं कवि के भावों का सहज दर्शन कराती हैं।

अन्त में पुरुषोत्तम जी को मैं बधाई देना चाहती हूँ कि उन्होंने काव्य–परम्परा कविता को कवित्व शक्ति से युक्त रखते हुए बिना गुण दोषों को जाने सुधी पाठकों के सामने अपने अन्तर्मन के भावों को एक सच्चे साधक की भाँति उड़ेल दिया है जो कविता–पिपासु हृदय को कहीं न कहीं स्पर्श अवश्य करेगी। मेरा मानना है जो हित में सहित है, वही साहित्य है। इसी विश्वास के साथ 'बेटी' कविता संग्रह अपनी छाप छोड़ेगी इसी मंगलकांक्षा के साथ,

(डॉ. राधा पाण्डेय)
कवयित्री
प्राचार्या
कुँवरि चन्द्रावती महाविद्यालय
मुमताजनगर, फ़ैज़ाबाद

अनुक्रमणिका

❑ ❑ ❑

विनय

हार कर ही प्रभु मैं पुकारा तुम्हें,
घोर छाया कुहासा मिटा दीजिए।
स्वार्थ परायणता से इतना आहत हुआ,
कोई अपना न अपना बना लीजिए।

कोई ऐसा न जिससे कहूँ वेदना
ढो रहा भार जैसे लगी जिंदगी।
कर कृपा हे प्रभु! शक्ति वह दीजिए
यह हृदय कर सके आप की बंदगी।

बुद्धि की भी पकड़ में जो आता नहीं,
दृश्य जीवन दिखाता है जब भी कभी।
प्यार भी मूल्य अपना लगे माँगने,
हे प्रभु! याद आती तुम्हारी तभी।

छिप न सकता कभी आप से कुछ प्रभु,
मुझ पतित पर भी करुणा की वर्षा करें।
आप के ध्यान में मन मेरा रम सके,
शक्ति ऐसी मेरे नाथ मन में भरें।

मैंने जीवन में जो कुछ किये कर्म हैं,
चाहता उनके फल से बचा दीजिए
हे दयासिन्धु! करता विनय बस यही,
नाथ, संकुल, पर भी अब कृपा कीजिए।

28.08.2010

वे दिन

लौट के आ सकते वे दिन न
जब तुम छोटी बच्ची थी।
कभी रूठती कभी मचलती
सदा शरारत करती थी।

मेरे उर पर लेट कर गिनती,
और पहाड़ा पढ़ती थी।
तनया को बिगाड़ डालोगे,
जननी तेरी कहती थी।

बैठाकर अपने कंधे पर
मेला तुम्हें घुमाता था।
चाट–मिठाई नहीं तुम्हें बस
सिर्फ़ खिलौना भाता था।

नन्हें–नन्हें हाथों से,
तुम विस्तृत भाव बनाती थी।
श्रवण पकड़ कर अश्व बनाकर,
तुम सवार हो जाती थी।

तब परियों की सुना कहानी,
तुमको मैं बहलाता था।
अपने खोये बचपन को
जैसे मैं तुममें पाता था।

अब बेटी तुम बड़ी हो गयी
वह सुख भी काफूर हुआ।
तुम्हें उछंग ले जो हर्ष पाया,
अतुलनीय, वह नहीं जहाँ।

30.12.2010

अगर हवा को

अगर हवा को पकड़ मैं पाती–
तो मैं उससे कहती।
दिन अरु रात बहा करती है
बोल कहाँ तुम रहती।

यदि मम्मी तुम मुझे बता दो,
उसका पता ठिकाना।
तो फिर उसको भेजूँगी मैं
लिखकर एक परवाना।

माता बोली प्यारी बिटिया,
हवा, हवा ही होती।
यहाँ–वहाँ हर जगह मगर,
फिर भी वह कहीं न मिलती।

हाँ अगर तू मुझे बता दे,
क्या तू उसे लिखेगी।
जहाँ तलक हो सकेगा,
सम्भव तेरी मदद करूँगी।

बेटी बोली हाथ नचाकर
चाह रही मैं उड़ना।
उसे सहेली बना मैं लेती,
यही चाहती लिखाना।

मुस्कुराकर माँ ने बेटी को,
लेकर गले लगाया।
पंख लगा दूँगी मैं तुझको,
कह करके समझाया।

विहँस उठी बालिका मगर फिर,
सहमी अरु घबरायी।
पंख गये यदि छूट तो मेरा,
क्या होगा मेरी माई।

04.01.2011

तारा

यदि गिर जाता आसमान से,
पास मेरे कोई तारा।
काम दिया का तब नहीं रहता,
देता वह उजियारा।

मैं पढ़ती उसके प्रकाश में,
फिर बस्ता में रखती।
मम्मी तुमको कभी न देती,
चाहे जो तुम कहती।

होता कोई पास नहीं तब,
उससे खेला करती।
नभ में कैसे विचरण करते,
जान मैं उससे लेती।

जब वह मुझको बतला देता,
तारों की क्या दुनिया।
तब तारों की बना मैं लेती,
एक कहानी बढ़िया।

तब मम्मी मैं तुम्हें सुनाती,
तारे कैसे रहते।
अपनी चमक बिखेर हमारे
मन को क्यों हैं हरते।

हाँ, अगर कहीं फिर उड़ जाता,
आसमान वह तारा।
तब मम्मी मैं रोने लगती,
तारा होता प्यारा।

5.1.2011

बेटी ही है कहानी

स्वच्छ चाँदनी पापा मेरे,
मन को इतना भाती।
सन्नाटा बुनती यह धरती,
ज्यों लगता सुस्ताती।

आओ! पापा बाहर चलकर
खेलें आँख–मिचौली
मैं जा करके छुप जाती
पकड़ो जब बोलूँ बोली।

नेत्र बन्द मेरा कर हाथ से
तब बेटी छिप जाती।
खोजो मुझको बड़े जोर से,
फिर आवाज लगाती।

सुनकर के आवाज सहज ही
पकड़कर उसको लाता।
अब तुम मुझको खोजो बेटी,
मैं छिपने को जाता।

मैं छिपता अरु मेरी बेटी
मुझे खोजने लगती।
हो जाती परेशान ढूँढ़ जब
वह मुझको नहीं पाती।

अब पापा तुम बाहर आओ
कहती हारी मानी।
मैं आता तो गला पकड़कर
कहती कहो कहानी।

नहीं समझ मैं तब पाया था,
बेटी ही है कहानी।
अब जिसकी स्मृति भर देती,
नेत्रों में मेरे पानी।

6.1.2011

बेटी स्कूल से आयी

भीग गयी बारिश से बेटी,
जब स्कूल से आयी।
बस्ता चारपाई पर पटका,
पापा कह चिल्लायी।

उसकी सुन आवाज दौड़कर,
पास मैं उसके आया।
तुरन्त दूसरे कपड़े लाकर,
उसको फिर बदलाया।

बेटी को पुचकार कर पूछा,
बारिश में क्यों आयी?
थोड़ी देर प्रतीक्षा बेटी,
तुम क्यों न कर पायी?

यदि हो गयी बीमार तो फिर,
बढ़ जायेगी परेशानी।
जान–बूझकर फिर भी बेटी,
करती क्यों नादानी।

बेटी बोली अच्छा होता,
यदि बीमार हो जाती।
तो पापा स्कूल भी तो,
जाने की छुट्टी पाती।

उसकी सुनकर बात कहा,
यदि तू बीमार हो जाती।
तो मुझको फिर रात में बेटी,
नीद कभी न आती।

अगर यही चाहती है तो,
जी में आये जो करना।
बेटी बोली बस–बस पापा,
अब आगे नहीं कहना।

जिससे आप को दुख पहुँचे,
वह काम न कभी करूँगी।
जाऊँगी स्कूल रोज घर में,
भी खूब पढ़ूँगी।

बेटी के उलझे केशों से,
पानी लगा सुखाने।
मम्मी अब खाना ले आओ,
बेटी लगी चिल्लाने।

7.1.2011

लाड़–प्यार

कोई काम नहीं बस दिन भर,
बेटी रहो खेलाते।
खुद तो पागल बने हुए हो,
अब क्यों इसे बनाते।

ज्यादा लाड़–प्यार करने से,
बच्चे सदा बिगड़ते।
मेरी माता जी कहती थीं,
पर कब आप समझते।

अच्छा होता मेरी जगह पर,
अगर तुम माता होते।
तो भी क्या तुम इसी तरह,
बेटी! बेटी!! चिल्लाते।

नहीं समझ में मेरी आता,
बेटी है या खिलौना।
यदि मैंने कुछ गलत कहा,
तो भी तुम खफा न होना।

इस धरती पर आज तलक,
विकसित न हुई वह क्षमता।
माँ के वात्सल्ययुक्त ममत्व की,
दे पायी जो समता।

हो सकता है उसी शक्ति ने,
मुझ पर किया सवारी।
इसीलिये बेटे से बढ़कर,
बेटी दिखती प्यारी।

लाड़–प्यार वह भाव की जिसको,
पशु पक्षी भी जानें।
चेतन की क्या बात,
प्यार की भाषा जड़ पहचानें।

प्रिये! यह मिथ्या सोच लाड़ से,
बच्चे लड़खड़ा जाते।
बल्कि इसके ही बल पर,
जग को कुछ नया दे पाते।।

8.1.2011

इस घर में

पापा रात नींद नहीं आयी,
डरी देख एक सपना।
मम्मी कहती इस घर में,
सदा नहीं मुझे रहना।

बेटी की सुन बात एक पल,
मैं भी लगा सोचने।
इसके कोमल मन–मस्तिष्क में,
प्रश्न लगे अब उठने।

आस–पास परिवेश और हमने,
ही इसे सिखाया।
छोटी बच्ची के दिमाग में,
प्रश्न तभी तो आया।

बेटी गोद उठाया कहा,
सपने सच कभी न होते।
जनक अरु जननी के उर से,
बच्चे दूर न रहते।

करती बात है तू जिस घर की,
वह घर तेरा न मेरा।
इस भूतल पर हर प्राणी का,
घर है मात्र बसेरा।

मेरी बात का अर्थ समझ,
बिटिया मेरी नहीं पायी।
गोदी से नीचे उतरी,
मम्मी के पास में आयी।

मम्मी तुम तो कहती थी,
सपने भी हैं सच होते।
मैं भी अपने छोड़कर घर को,
आयी थी यहाँ रोते।

पर मम्मी–पापा कहते उर ही,
मेरा सदन तुम्हारा,
बेटी जिसमें वास करेगी,
देगी मुझे सहारा।

बेटी की सुन बात कहा माँ
तुम हो बहुत सोचती।
बेटी बोली मम्मी प्यारी,
बात तुम ऐसी कहती।

9–1–11

वह सूरज कहलाता

मैं बैठा पी रहा चाय था,
दौड़कर बेटी आयी।
हाथ पकड़ मेरा द्वार पर,
लायी अँगुली गगन उठायी।

देखो पापा चाँद किस तरह,
लगता है बेचारा।
मुझको लगता है सूरज ने,
जैसे इसको मारा।

सूरज को देखते ही पापा,
चन्दा क्यों छुप जाता।
इसका सुन्दर मुखड़ा पापा,
क्यों पीला हो जाता?

कहाँ चली जाती है इसकी,
स्वच्छ चाँदनी सारी।
पापा मुझे बता सकते हो,
क्या इसकी लाचारी।

सूरज और चाँद में बेटी,
बहुत बड़ा है अंतर।
सूरज में बसता प्रकाश है,
जो न चाँद के अंदर।

इसीलिए सूरज के सम्मुख,
चाँद नहीं टिक पाता।
फैलाता जो चाँद चाँदनी,
वह उधार ही लाता।

देता जो सब को प्रकाश है,
वह सूरज कहलाता।
जिसमें नहीं प्रकाश,
अँधेरे में विलुप्त हो जाता।

10–1–11

अनुभव

जीवन के कुछ ऐसे अनुभव,
मन में रहे दबाये।
होता है संकोच कि कैसे,
अपनी बात बतायें।

वैसे तो मुझको लगता है,
कुछ भी पहली बार।
मनोभाव पर कर जाता है,
अपना अमिट प्रहार।

अब यह है मानस पटल पर,
वह कितना टिकता है।
पल–पल बहने वाला जीवन,
कब तक ले चलता है।

जग में एक नहीं हो सकती,
मानव की विचारधारा।
अनुभव की तह में वह जाता,
जिसका हृदय न्यारा।

प्रथम बार मैंने बेटी को,
जिस क्षण गोद उठाया।
नवजात शिशु को छूने का,
आभास मनस्थल पाया।

पुलक उठा उर मगर हाथ पर
भार हुआ था भारी।
दुलराया पाया न बिटिया को,
कोशिश कर ली सारी।

उस अनुभव को आज भी पाया,
भूल न मेरा मन है,
क्योंकि मेरे मन में अब भी,
छिपा कहीं बचपन है।

कभी सोचने लगता हूँ फिर,
लौट वहीं पर जाऊँ।
बेटी तुम छोटी हो जाओ,
फिर मैं गोद उठाऊँ।

कभी नहीं जो हो सकता है,
मन क्यों उसमें जाता ।
बहुत सोचता फिर भी कोई,
उत्तर कभी न पाता।

11–1–11

खाना

एक मदारी मेरे गाँव में,
एक रोज था आया।
जादू का वह दिखा तमाशा,
सब का मन बहलाया।

खेल देखकर जादू वाला,
पास में बेटी आयी।
मुख पर आश्चर्य भाव लिये थी,
शंकित पड़ी दिखायी।

मैंने पूछा सहज भाव से,
उसे गोद में लेकर।
बेटी मुझको बतलाओ,
आयी क्या खेल देखकर।

बेटी लगी बताने मदारी,
करतब कई दिखाया।
उसका पापा खेल देखकर,
मेरा मन भर आया।

डम–डम डमरू बजाकर उसने,
बच्चा हवा उड़ाया।
टायर से टोकरी के अंदर,
काला साँप बनाया।

फिर बच्चा को बुला गगन से,
पेट में चाकू मारा।
पापी पेट का यह सवाल है,
कहने लगा बेचारा।

अपने–अपने घर से बच्चो,
अब जाकर कुछ लाओ।
बड़े जोर की भूख लगी है,
खाना कोई खिलाओ।

इतना जादू जान करके भी,
माँग रहा है खाना।
जादू बना न सकता खाना।
पापा क्यों बतलाना।

12–1–11

भूख

बेटी रोने लगी और मैं,
चुप उसे करा न पाया।
भूखी होगी यही सोचकर,
माँ के पास में लाया।

माँ बोली बर्तन को धो लूँ
थोड़ी देर सँभालो।
घर का काम खत्म नहीं होता,
कितना जोर लगाओ।

बेटी लेकर बाहर आया,
पर चुप करा न पाया।
होकर विवश दिया तब माँ को,
अपनी बात बताया।

छोटे शिशु को बहलाना प्रिये,
लगता मुझे नहीं आसान।
अब तुम इसकी क्षुधा मिटा दो,
मत करो इसको परेशान।

धोकर हाथ लिया वह बेटी,
मैंने जैसे राहत पायी।
आँचल डाल दिया बिटिया पर,
ओठों पर मुस्कराहट आयी।

शिशु और माँ के बीच का सम्बन्ध,
शायद कोई समझ न पाया।
आपने भी बस भूख समझकर,
पास में मेरे इसको लाया।

उसकी सुनकर बात कहा मैं,
सच कोई न भूख से बढ़कर।
आदर्श मूल्य एवं ममता को,
देखा भूख ने करते जर्जर।

13–1–11

चलने को बाजार

चलने को बाजार साथ में,
बेटा–बेटी लड़ते।
समझाता पर बात मेरी वे,
दोनों ही नहीं सुनते।

बेटी कहती शुक्रवार को,
भैया घूमकर आया।
आज हमारी बारी है,
भैया क्यों टाँग अड़ाया।

तुम दोनों ही करो फैसला,
निज मंतव्य सुनाया।
होती बहस रही दोनों में,
निर्णय न हो पाया।

तब मैंने दो बना कर पर्ची,
सामने उनके रखी।
अब दोनों एक–एक उठाओ,
करो न देखा–देखी।

अपनी पर्ची खोल कर बेटी,
तब भैया से बोली।
भैया तुम तो जीत गये,
कहकर के वहाँ से डोली।

आश्चर्यचकित हुआ कुछ बेटा,
फिर थोड़ा मुस्कराया।
पापा इसने जीत कर बाजी,
अपनी हार बताया।

मैंने बेटी से तब पूछा
जीत कर क्यों नहीं चलती।
बेटी बोली हार–जीत से,
पापा मैं हूँ डरती।

बेटा बोला जीत कर बाजी,
मान रही तुम हारी।
इसीलिए तो पापा को,
लगती तुम इतनी प्यारी।

15–1–11

उठती गिरती

उठती गिरती चलती बेटी,
एक पल नहीं बैठती थी।
यहाँ–वहाँ हर जगह वह,
सारे, घर में घूमा करती थी।

अगर रुकावट आ जाये तो,
बड़े जोर से चीखती थी।
जननी सारा काम छोड़ कर,
दौड़ पास में आती थी।

मम्मी पाकर एक लता –सी,
लिपट वह उनसे जाती थी।
बिना किये पयपान फिर उनको,
कभी न जाने देती थी।

माँ जाते–जाते चिल्लाती,
कहाँ हो जी क्या करते हो?
एक छोटी–सी बच्ची को भी,
तुम सँभाल नहीं सकते हो।

मैं आकर कहता तुम जाओ,
बेटी गोद उठा लेता।
कंधे पर थपकी दे–देकर,
गहरी नींद सुला देता।

लेकिन जैसे उसे लिटाता,
वैसे ही वह जग जाती।
मेरा परिश्रम विफल देखकर,
भार्या केवल मुस्काती।

16–1–11

बुलबुल

बुलबुल का एक पकड़ कर बच्चा,
लेकर बिटिया आयी।
कहाँ मिला किस तरह पड़ा था,
सारी बात बतायी।

पापा इसे उठाकर यदि मैं,
नहीं यहाँ ले आती।
कुत्ते–बिल्ली इसे देखती,
तो इसको खा जाती।

एक छोटा पिजड़ा पापा,
आज जरूर ले आना।
बुलबुल पापा क्या खाती है,
यह भी मुझे बताना।

इतना कहकर मेरे हाथ में,
दे बुलबुल का बच्चा।
जाती हूँ स्कूल पापा जी,
करना इसकी रक्षा।

बेटी गयी स्कूल मगर मुझे,
देकर काम निराला,
उस बुलबुल को पालने का,
तिकड़म मैंने कर डाला।

चार बजे स्कूल से आते,
लगी देखने उसको।
खाना खाया न मम्मी से,
लगी पूछने मुझको।

पापा तुमने खिला दिया क्या,
इस बच्चे को खाना।
मेरे हाँ के सुनते ही,
उसका चेहरा खिल जाना।

अपनी बाँह पसार दौड़कर,
लिपट गयी वह मुझसे।
मुझे समेट लिया आनन्द ने,
लगा हृदय को ऐसे।

18–1–11

हुआ सबेरा

हुआ सबेरा माता बोली,
अब बिटिया उठ जाओ।
बहुत काम घर का बाकी है,
कुछ तो हाथ बटाओ।

अलसाई–सी बेटी बोली,
माँ थोड़ा सोने दो।
इतवार छुट्टी का दिन है,
आज काम रहने दो।

इतवार है तो क्या तुम आज,
खाओगी नहीं खाना।
बतलाती कोई काम तो बेटी,
करने लगती बहाना।

बेटी बोली प्यारी मम्मी,
तुम कितनी हो अच्छी।
कहती हो जो बात भी माता,
लगती है मुझे सच्ची।

पर मम्मी मैं चाह रही हूँ
और थोड़ी देर सोऊँ।
पता नहीं जीवन में आगे,
हसूँ या कि फिर रोऊँ।

बेटी की सुन बात कहा माँ,
यह क्या तू बकती है।
सो जा बेटी मैं जाती हूँ,
क्यों दुख को देती है।

बेटी ने ली ओढ़ रजाई,
मन–ही–मन मुस्कायी।
बहुत किया कोशिश सोने की,
मगर नींद नहीं आयी।

24–1–11

पहली बार

पापा पहली बार मुझे कह,
जब बेटी ने पुकारा।
मुझे लगा ज्यों मनस्थल से,
टपक पड़ी रसधारा।

एक अजीब अहसास से उस दम,
भीग गया तन सारा।
पापा शब्द का अर्थ लगा था,
मुझको इतना न्यारा।

बेटी लिया उठाया हृदय से,
ता क्षण उसे लगाया।
नेत्र हो गये बंद,
ध्यान एकाग्र मेरा हो आया।

बेटी रोने लगी अचानक,
ध्यान तब मेरा टूटा।
प्रयत्न उसे फिर चुप करने का,
करने लगा अनूठा।

चुप हो जाओ बिटिया रानी,
चाँद उतर आयेगा।
मेरे हाथ से लेकर तुमको,
चन्द्रलोक जायेगा।

यह सुन बिटिया हुई न चुप तब,
मन–ही–मन पछताया।
इस छोटी–सी जान को नाहक,
इतनी जोर दबाया।

तब बाँहो का बनाकर झूला,
उसको लगा झुलाने।
अब बेटी ऐसा न करूँगा।
लगा उसे समझाने।

फिर भी चुप नहीं हुई तो,
मन से होकर भारी।
माँ की गोद में देकर बोला,
भूखी है बेचारी।

25.01.2011

विषधर

तीन रोज से लगातार से,
बरस रहा था पानी।
भीग गये घर–खेत–बाग–वन,
हर तरफ दिखता पानी।

आज रुकी दोपहर जब बारिश,
मैंने राहत पायी।
चलकर खेत देख आता हूँ
लाठी तुरन्त उठायी।

घर से बाहर निकलने को,
जैसे कदम बढ़ाया।
पापा मैं भी साथ चलूँगी,
बिटिया पैर अड़ाया।

मैंने उसे रोकना चाहा,
भय दिखला डरवाया।
मेरी बात को सुनकर उसकी,
आँख में आँसू आया।

देखकर आँसू उमड़ पड़ा,
हृदय में मेरे क्रन्दन।
लेकर उसको गोद चला,
हो करके प्रमुदित मन।

पहुँचा खेत घूम कर देखा,
एक खाई के ऊपर।
मुँह में एक दादुर को पकड़े,
बैठा था एक विषधर।

मौत के मुँह में फँसकर दादुर,
अब भी कर संघर्ष रहा था।
स्पात् मौत से बच जाऊँगा,
अभी आश में बँधा हुआ था।

बेटी ने जब दृश्य यह देखा,
कसकर पकड़ ली मेरी गरदन।
पापा आप सही कहते थे,
सचमुच अब डर रहा मेरा मन।

बेटी उतरो एक बार में,
अभी साँप का अंत करूँगा।
इस निरीह छोटे प्राणी को,
इस प्रकार न मरने दूँगा।

जैसे मैंने लाठी उठायी,
बिटिया ने आवाज लगायी।
मेढक तो अब नहीं बचेगा,
साँप के वध में नहीं भलायी।

26.–1–11

मेरी गुड़िया

धूल से सने हुए कपड़े में,
खेल कर बेटी आयी।
कान पकड़ कर मम्मी बोली,
कर दूँ तेरी पिटायी।

कितना समझाओ पर बेटी,
कभी नहीं सुनती है।
हो गयी इतनी बड़ी,
मगर मिट्टी खेला करती है।

बेटी बोली कान छोड़ दो,
अब ऐसा न करूँगी।
आप कहेंगी जैसे माता,
वैसे ही मैं चलूँगी।

माता बोली बहुत चतुर है,
बात बना लेती है।
पर बेटी उसके ऊपर,
तू कभी नहीं चलती है।

रोज–रोज तो कहती है,
अब ऐसा नहीं करूँगी।
मम्मी चौका बर्तन अरु
घर का हर काम करूँगी।

थोड़ी देर के बाद में कहती,
होम वर्क करना है।
प्यारी मम्मी तुम्हीं बताओ,
क्या मुझे नहीं पढ़ना है।

अब तो मुझे सताया न कर,
सुन प्यारी मेरी गुड़िया।
घर का काम मैं करते–करते,
थक जाती हूँ बिटिया।

बेटी बोली आज से मम्मी,
तुम्हें न तंग करूँगी।
अपने कपड़े खुद धोकर,
घर का भी काम करूँगी।

तेरा काम करने से बेटी,
मुझको सुख मिलता है,
बनी रहे तू सदा यूँ छोटी,
मेरा मन कहता है।

30.01.2011

वर्षागम

घनघोर घटायें छायी थीं,
वर्षागम संध्या उतर रही ।
कल की मैं सोच रहा मन में,
द्वारे पर बेटी खेल रही।

झींगुर ने तान छेड़ रखा
संगीत मधुर इतना अनिंद्य।
उस क्षण आकर मेरी बेटी ने,
कर दिया ध्यान को मेरे भंग–

मेरा हाथ पकड़ बाहर लायी,
फिर उठा कर अँगुली कही बात।
पापा देखो उस तरु ऊपर,
खिल रहे फूल कैसे है रात।

बेटी को गोद उठा करके,
फिर लगा देखने मैं वह दृश्य।
जाने कितने बार देखा था,
पर आज लगा एकदम विशिष्ट।

बेटी बोली पापा जाओ,
उस तरु से फूल तोड़ लाओ।
मैं हाथ में लेकर पूछूँगी।
क्यों इतने सुन्दर बतलाओ।।

बेटी कक आग्रह पर जाकर,
खद्योत पकड़ कर एक लाया।
रख करके उसके हाथों पर,
लो पकड़ो फूल कह मुस्काया।

बेटी बोली लघु कीट है यह
मैं तो इसे फूल समझती थी
रखूँगी सदा पास इसको
इस लालच में मैं पड़ गयी थी

फिर कर से उसको उड़ा कहा,
खद्योत बहुत तुम छोटे हो।
लेकिन अपनी बिखेर रश्मि,
बरबस मन को हर लेते हो।

31.01.2011

एक सी ममता

खेल रहा था मैं बेटी से,
या था उसे खेलाता।
उसको बहलाता या खुद को,
समझ न मेरी आता।

बनाकर झूला लिटाकर बेटी,
उसको रहा झुलाता।
झूलते–झूलते वह सो जाती,
मैं रहता गुनगुनाता।

भार्या कहती बेटी सो गयी,
किसको गीत सुनाते।
बिना अर्थ के शब्द तुम्हारे,
पता नहीं क्या गाते।

सच कहती तुम नहीं जानता,
आखिर मैं क्या गाता?
पर मन को संतोष मिल रहा,
सत्य तुम्हें बतलाता।

सच जीवन के वे ही पल हैं,
उर आनन्द जब भरता।
क्या तुम मुझको दे सकती हो,
इस सुख की कहीं समता।

मेरी बात को सुनकर भार्या,
धीरे से मुस्कायी।
खो जाओ तुम अपने सुख में,
कहकर कदम बढ़ायी।

हाथ पकड़ कर कहा मैं उसका,
अब यह नहीं हो सकता।
निकल गया जो समय लौटकर,
वह कैसे आ सकता।

वह बोली फिर क्या हो सकता,
जिससे वह सुख पाओ।
मैं बोला बस एक बार फिर,
धीरे से मुस्कराओ।

प्रिय जिस सुख को खोज रहे थे,
यही है उसकी समता।
हाँ प्यार वात्सल्य दोनों से,
मुझे एक–सी ममता ।

31–1–11

मनस्तल में रहती

एक चपल चंचल–सी तितली,
मन स्थल में रहती।
करती मुझे विभोर शरारत,
करती सदा मचलती।

वह अनिंद्य इतनी प्यारी थी,
जिससे खेल रहा था।
भूल गया यह ध्यान कि,
जीवन, मुझसे भाग रहा था।

वह तितली कोई और नहीं,
मेरी प्यारी बिटिया थी।
घर की थी रोशनी,
विचारों की मेरी तकिया थी।

उसको लेकर गोदी में,
मन को जिस बिन्दु पर पाता।
उसकी जो अनुभूति शब्द से,
नहीं प्रकट कर सकता।

मेरी अँगुली पकड़कर चलते,
चलते जब गिर जाती।
लेता गोद उठाय सटा लेता,
मैं अपनी छाती।

माँ कहती गिर–गिर के ही तो,
सीखते हैं हम चलना।
गिरकर इसको उठने दो,
पकड़ो मत ज्यों गहना।

भार्या की इन बातों का,
मैं उत्तर कभी न देता।
पर बेटी को फिर गोदी से,
कभी न नीचे रखता।

अब भी जब मन थक जाता है,
वह तितली आती है।
पापा–पापा सुन पड़ता,
पर नजर नहीं आती है।

तब मैं उसे खोजने लगता,
स्मृतियों को पलटकर।
बेटी से बतलाने लगता,
अपने मन के अंदर।

1–2–11

उसके मन की पीड़ा

हाथ पकड़कर कान छेदाने,
माँ बेटी को लायी।
सुई को उसने जैसे देखा,
बड़े जोर चिल्लायी।

पापा आओ मुझे बचाओ,
मम्मी मरवा देगी,
कान छेदाकर अपने जैसे,
मुझे बना डालेगी।

बेटी की सुन बात कहा,
बेकार तू चिल्लाती है।
कान छेदाकर ही लड़की,
प्यारी गुड़िया बनती है।

कान में होगा जब तेरे बाला,
दिखेगी अतिसय न्यारी।
तब बेटी तू लगेगी जैसे
पूनम की उजियारी।

पापा मुझको बना रहे हो,
यह मैं जान रही हूँ।
मम्मी से तुम मिले हुए हो,
अब पहचान गयी हूँ।

पर पापा मुझे कान छेदा कर,
नहीं है बनना सुन्दर।
जैसे मैं अन्दर वैसे ही,
रहना चाहती बाहर।

होकर छोटी बेटी पर तू,
बात बड़ी करती है।
तेरी बातें सुनता हूँ तो,
बुद्धि मेरी हिलती है।

चाहे तो मेरी बात मान ले,
या फिर तेरी मर्जी।
नहीं लाद मैं तुझ पर सकता,
जो विचार हों फर्जी।

कान छेदाकर जब मेरी बेटी,
पास में मेरे आयी।
चेहरे पर चंचलता न थी
आँखें नम दिखलायी।

मेरे उर ने जान लिया था,
उसके मन की पीड़ा।
पर उसको समझाऊँ कैसे,
भूल गया सब क्रीड़ा।

2—2—11

अंतर

जाते हो बाजार को पापा,
रंग आज ले आना।
चार दिनों के बाद है होली,
भूल नहीं मत जाना।

रंग को लेकर करोगी क्या तुम,
जब मैं जानना चाहा,
चाह रहा मन चित्र बनाऊँ।
बेटी ने तब कहा।

बनाऊँगी दरवाजे पर,
पापा फूल दो सुन्दर।
दोनों एक ही जैसे होंगे,
होगा कोई न अंतर।

मेरी कला को जो देखेगा,
भ्रम में पड़ जायेगा।
दोनों में से श्रेष्ठ कौन है?
नहीं बता पायेगा।

मैंने लाकर रंग दिया,
बिटिया ने कला दिखायी।
द्वार के दोनों तरफ दो सुन्दर,
आकृति उसने बनायी।

उसकी कला देखकर सुन्दर,
मन पुलकित हो आया।
वात्सल्य का बह उठा स्रोत,
तब उसको गले लगाया।

पापा ये दो पुष्प नहीं ,
ये है विचार की छाया।
अपने मन का भाव प्रकट करके,
मैंने दिखलाया।

पापा तुम को लगे ये कैसे,
सच जो मुझे बताओ।
बेटी तुम सच जान रही हो,
मत मुझसे कहलाओ।

मुस्करा कर बेटी ने जैसे,
बात पुष्टि मेरी कर दी।
करके अपना काम खत्म,
तब फिर वह घर को चल दी।

पर अब भी मैं देख रहा था,
पुष्प वे दोनों सुन्दर।
सोच न पाया लोग क्यों इनमें,
कर देते हैं अंतर।

3.2.2011

संध्या

धीरे–धीरे उतर रही,
सन्ध्या भूतल पर।
पक्षी झुंडों में वापस,
आ रहे नीड पर।

पंक्तिबद्ध उठ रहे,
भूलकर के चहचहाहट।
सरल शान्त हो गये मुक्त,
तज के कड़ुआहट।

देख रहा मैं छत पर बैठा,
संध्या आगे बढ़ती जाती।
फैलाकर अपने आँचल को,
जो भी मिलता उसे ओढ़ती।

दिन भर की सारी पीड़ा को,
सबके चित से हरती जाती।
माँ की थपकी–सी ज्यों मन को,
प्रिया–सी जैसे तन पर छाती।

बेटी बोली चाय को पी लो,
पापा इसको मैंने बनायी।
चीनी आप तो कम लेते हैं,
इसीलिये थोड़ी–सी मिलायी।

हाथ पकड़कर कहा बैठ जा,
लगता है कोई प्रश्न को लायी।
पापा पहले चाय को पी लो,
कहाँ हो बेटी माँ चिल्लायी।

हो गयी इतनी बड़ी मगर,
अब तक तुझको है अक्ल न आयी।
चाय के चक्कर में तू पड़कर,
सारी सब्जी दिया जलायी।

फिर वह बोली बुरी है आदत,
दिन भर चाय–चाय चिल्लाते।
पूरा दिन बस घूमा करते,
कभी न कण्डा लकड़ी लाते।

बस मम्मी अब चुप हो जाओ,
पापा को बेकार कोसती।
पापा ने तो नहीं कहा था,
चाय बनाकर मैं की गलती।

मैने देखा संध्या भी अब,
स्याहमय हो गयी थी काली।
पश्चिम में भी नहीं बची थी,
लुप्त हो गयी थी सब लाली।

5–2–11

सूत्र

सोच रहा चूहा बिल्ली से,
यदि मित्रता मेरी हो जाये।
तब वह दूर नहीं दिन जिस दिन,
हम बिल्ली से मुक्ति पायें।

मुश्किल था पर किस प्रकार से,
सम्पर्क में बिल्ली के जाये।
और विषय क्या जिसके बल पर,
उसके दिल में जगह बनायें।

बहुत किया चिंतन चूहे ने,
पर निर्णय पर पहुँच न पाया।
बिल्ली से मित्रता का कोई
मार्ग नहीं उसको दिखलाया।

घेर लिया चूहे को उदासी,
जो चूहिया को पसन्द न आयी।
गले में बाहें डालकर उसके,
मन की बात जाननी चाही।

चूहे ने तब उसे बतायी,
अपने मन की सारी बातें।
कैसे खत्म करें हम बिल्ली,
बता मुझे कुछ ऐसी घातें।

चूहिया बोली राजनीति ही,
दे सकती है इसका उत्तर।
राजनीति अब प्रियतम सीखो,
पर वह मेरे समझ से बाहर।

बेटी बोली पापा बताओ,
क्या चूहे ने बिल्ली मारी।
मैंने कहा सोचते–सोचते,
उमर निकल गयी उसकी सारी।

बेटी चूहे ने जो सोचा,
यद्यपि न पूरा कर पाया।
पर एक नये सोच का उसने,
नव पीढ़ी को सूत्र दिखाया।

6–2–11

पूजा

काली माई की पूजा कर,
माता जब घर आयी।
कुत्ता निकला रसोई से,
देख उसे चिल्लाई।
बेटी तुमसे कहा मैं क्या था,
पर तुम क्या करती थी।
कुत्ते ने छू लिया रसोई,
बोल कहाँ बैठी थी।
धीरे से तब बेटी बोली,
मम्मी मैं पढ़ती थी।
भूल गयी घर आप नहीं हैं,
माँ मेरी गलती थी।
अच्छा तो अब धोकर रसोई,
फिर से बना तू खाना।
वरना तुझको मारूँगी मैं,
माँ ने थप्पड़ ताना।
बंद पढ़ाई करके बेटी,
तुरन्त रसोई आयी।
चौका मारा बर्तन धोया,
चूल्हा आग जलायी।
हुआ धुँआ कण्डों से ऐसा,
जिसे न वह सह पायी।
तब वह मेरे पास में आकर,
सारी बात बतायी।
जा बेटी परेशान न हो तू,
मैंने उसे समझाया।
आकर के फिर रसोई में,
चूल्हा मैंने जलाया।

तब तक भार्या रही देखती,
खड़ी रही नहीं डोली।
जब रोटी मैं लगा सेंकने,
तब आ करके बोली।
बस–बस अब तुम रहने दो इसे,
यह नहीं काम तुम्हारा।
पर बेटी से प्यार भी इतना,
अच्छा नहीं तुम्हारा।
मैंने जाते समय कहा था,
घर का ध्यान भी रखना।
पर इसने माना ही कब है,
कभी हमारा कहना।
सोचा मैंने आज यही था,
खाना बनवाऊँगी।
कैसे कण्डा लकड़ी चलता,
सबक भी सिखलाऊँगी।
पर मैं नहीं देख सकती हूँ,
आपकी यह परेशानी।
हट जाओ जी कहते–कहते,
नयन में भर गये पानी।
मैंने कहा नाहक ही तुम,
बच्ची पर कुढ़ती हो।
तुम भी कभी छोटी बच्ची थी,
भूल ये क्यों जाती हो।
माता तब मुस्कराकर बोली,
बेटी पास में आओ।
मैंने जो कुछ तुम्हें कहा है,
मन से उसे भगाओ।

(7–2–11)

गोद में

जब मैं अपने गोद में लेता,
अरु बेटी मुस्काती।
दुःख हो जाते दूर,
एक स्फूर्ति नयी आ जाती।

जेठ की गर्मी का प्रकोप भी,
तब नहीं मुझे सताता।
दिनभर का सारा थकान,
तनावमुक्त हो जाता।

भूल मैं जाता तब बनिया का,
कर्ज भी मुझे चुकाना।
सर पर बैठा है आषाढ़,
एक बैल भी तो है लाना।

भार्या के कटु वचनों से,
होती जो मन में पीड़ा।
वह भी जाता भूल,
करने लगता बेटी से क्रीड़ा।

बेटी को दुलराने से,
संतोष हृदय पा जाता।
कुछ पल के ही लिए सही,
मन को न द्वन्द्व दिखलाता।

गोदी में ही सो जाती थी,
जब वह मेरी बिटिया।
उसे लिटाता खाट पर जैसे,
फिर दिख जाती दुनिया।

गये थे कल बाजार मगर,
सब्जी लेकर नहीं आये।
भार्या बोली दाल–रोटी से,
आज का काम चलायें।

अपने को केवल देवी जी,
आया पेट ही भरना।
आज तलक मैं कभी स्वाद का,
देखा भी नहीं सपना।

8–2–11

बादल और चाँद

दौड़ रहे हैं पापा बादल,
पर लगता है चन्द्र भागता।
मोह रहा है मन को मेरे,
दृश्य यह कितना सुन्दर लगता।

काले मेघों में छिप करके,
आँखों से ओझल हो जाता।
श्वेत बादलों में न छिपता,
दिखता पर जैसे शर्माता।

आती–जाती हुई चाँदनी,
छू–छू कर भूतल हरषाती।
लगता जैसे कुछ कहती है,
पर वह भाषा मुझे न आती।

बेटी तुम स्कूल में जाती,
पढ़ती हो विज्ञान की बातें।
कैसे का उत्तर मिलता है,
उलझ सदा हम क्यों में जाते।

आँखें कैसे धोखा खातीं,
बेटी तुम यह देख रही हो।
मगर सही क्या उसे खोजना,
जीवन में आसान नहीं है।

अपनी ज्ञान परिधि के अंदर,
ही होती आयी परिभाषा।
जो खुद को ही न समझा हो,
औरों को क्या देगा दिलासा।

झूठी दिलासा उचित नहीं है,
बेटी को यह मत समझाओ।
ब्याह के बाद कहा है केवल,
दिया है क्या एक नाम सुनाओ।

एक अँगूठी की इच्छा थी,
मिली नहीं गल गयी जवानी।
बेटी को अब नहीं सुनना,
झूठ–मूठ की बना कहानी।

मुस्कराकर तब बेटी बोली,
पापा चलकर खाना खायें।
आँधी जब आने वाली हो,
उचित यही घर में छिप जायें।

मैं आँधी हूँ माता बोली,
तू उपदेश मुझे लगी देने।
बेटी भाग गयी घर अंदर,
लगा खुशामद तब मैं करने।

9–2–11

नकल

कूक रही कोयल की ध्वनि सुन,
बेटी प्रतिध्वनि करती।
कहा मैंने पढ़ती है या तू,
नकल कोयल की करती ।

सुनकर मेरी बात चौंक पड़ी,
मेरी तरफ निहारा।
बंद कर दिया कूक,
मौन व्रत का ले लिया सहारा।

वृक्ष के ऊपर बैठी कोयल,
अब भी कूक रही थी।
एक मधुर संगीत श्रवण के,
अंदर घोल रही थी।

पर बेटी की बंद कूक,
रिक्तता मुझे दिखलायी।
मैने उसको भरने के लिए,
बेटी गोद उठायी।

मैंने उससें कहा कुहूकती,
तुम भी जैसे कोयल।
मैं भ्रम में पड़ गया,
नहीं निर्णय कर पाया कुछ पल।

देख तेरे चुप हो जाने से,
कोयल हो गयी मौन।
प्यारी बेटी मुझे सुना दे,
फिर से मधुर वे बैन।

मेरे गोद से उतर कुहूक कर,
कोयल जैसे बोली।
उसकी कूकू को सुन कोयल,
प्रति उत्तर में बोली।

पर बेटी के स्वर के अन्दर,
पहले से था अंतर।
जाता अटक जो मन के अंदर,
सहज न होता बाहर।

10–2–11

अमियाँ

चार बजे छुट्‌टी होती है,
देर से क्यों तुम आयी।
बगिया चली गयी मैं पापा।
देखो अमियाँ लायी।

सब्जी घर में आज नहीं थी,
इसलिये अमियाँ लायी।
बनेगी इसकी बढ़िया चटनी,
कह करके मुस्कायी।

बेटी की सुन बात कहा,
तू इतना क्यों सोचती है।
चल मुँह धोकर खाना खा,
मम्मी चिंता करती है।

पत्नी को जब बतलाया,
यह अमियाँ ले आयी है।
मेरी सब्जी की चिंता,
स्कूल में इसे आयी है।

कल तुमसे पैसा माँगा था,
तुमने कहा नहीं है।
इसने सुन लिया मेरी बात,
बेटी क्या सही नहीं है।

स्वीकृति में सर हिला दी बेटी,
पास मैं उसके आया।
लीन्हा गोद उठाया, नहीं,
उससे फिर कुछ कह पाया।

11–2–11

मटर की छीमी

मटर की छीमी तोड़ रहा,
बेटी थी साथ में आयी।
इधर–उधर की भाग–दौड़कर,
पास हमारे आयी।

हाथ दिखाकर रोकर बोली,
मधुमक्खी ने काटा।
तब मैं बोला तुमने उनको,
मारा होगा चाँटा।

बेटी बोली पापा इनको,
फूलों से उठा रही थी।
फूल के रस को पीती थी,
इस कारण भगा रही थी।

इसी बात पर काटकर मुझको,
गुस्सा होकर पंख पसारा।
अगर पँख मेरे पास भी होते,
तब होता कुछ और नजारा।

खेत में एक भी मधुमक्खी को,
पापा यहाँ न रहने देती।
मटर और भी मीठी होती,
फूल का रस यदि ये नहीं पीती।

इतना कहते–कहते बोली,
पापा अब मैं घर जाऊँगी।
मेरी बात को सुनती होगी,
मुझे काटने फिर आयेगी।

यह कह करके लगी सुबकने,
मैंने उसको गोद उठाया।
घर में आते ही मम्मी को,
उसने सारा हाल सुनाया।

मम्मी बोली प्यारी बिटिया,
फूल का रस मधुमक्खी पीती।
पर उसके बदले में मधु व,
फूल को है नवजीवन देती।

12–2–11

रातरानी

रात रानी महक रही थी,
घर में कोई समझ न पाया।
मेरे आते ही बेटी ने,
उस सुगन्ध पर प्रश्न उठाया।

हाथ पकड़ उसे बाहर लाकर,
तब बोला मैं वृक्ष दिखाकर।
महक का कारण पुष्प यही है,
तुम भी देखो ध्यान लगाकर।

बेटी दौड़ कर तब घर आयी,
माँ को सारी बात बतायी।
अगरबत्ती की नहीं वह खुशबू
महक रही रात रानी माई।

माँ भी विस्मृत होकर बाहर,
तुरन्त हमारे पास में आयी।
अहा! सुन्दर यह कितनी खुशबू,
पर मैं इसको खोज न पायी।

छिपी हुई रहती है बेटी,
हर प्राणी में भी एक शक्ति।
पर जब तक वह प्रकट न होती,
गति जीवन को भी नहीं मिलती।

देखो इस छोटे से पुष्प को,
क्या यह है सुन्दर दिखता।
पर अपनी सुगन्ध के बल पर,
बरबस खींच के मन ले जाता।

इस भूतल पर जो भी प्राणी,
यों अपनी सुगन्ध बिखराता।
युगों–युगों तक उस खुशबू से,
मानव मन रहता हर्षाता।

बेटी बोली तो फिर पापा,
फूल से बढ़कर खुशबू न्यारी।
मैंने कहा ठीक कहा तुमने,
बेटे से ज्यों बेटी प्यारी।

13–2–11

इन्द्रधनुष

मम्मी देखो इन्द्रधनुष को,
लगता है यह कितना प्यारा।
इसे देखकर जी कहता है,
यदि बस चलता कहीं हमारा।

तो मैं उसके पास में जाकर,
उससे बातें करके आती।
किसने उसे बनाया सुन्दर,
पूछकर उससे तुम्हें बताती।

बतलाया माँ ने बेटी को,
इन्द्रधनुष यह कैसे बनता।
बेटी बोली कुछ भी हो माँ,
पर यह मेरे मन को हरता।

रंगों की यह सुन्दर आकृति,
आसमान में इतनी न्यारी।
चन्द्र–सूर्य–तारों की शोभा,
सिमट गयी मिलकर ज्यों सारी।

महत्त्वपूर्ण यह नहीं है मम्मी,
इन्द्रधनुष यह कैसे बनता।
मैं तो बस जानती हूँ इतना,
मुझे बहुत यह अच्छा लगता।

मन को जो सुन्दर लगता हो,
उसे देखकर बल मिलता है।
बार–बार फिर उसे देखने,
को माता हृदय कहता है।

आसमान के इन्द्रधनुष से,
भी बढ़कर माता है न्यारी।
बच्चे के जीवन को रँग कर,
भर देती है खुशियाँ सारी।

बस–बस अब आगे नहीं कहना,
माँ ने पकड़ी उसकी चोटी,
जाती है स्कूल मगर अभी,
बुद्धि तुम्हारी बेटी मोटी।

एक वृक्ष की ही शाखा में,
फूल और काँटे हैं बढ़ते।
माँ की ममता की हम समता,
बेटी कभी नहीं दे सकते।

मेरी बात पर बेटी बोली,
सच है माँ से कुछ नहीं बढ़कर।
पर वह सदा छली जाती है,
पापा इस ब्रह्माण्ड के अंदर।

14–2–11

गलती

लगी हुई थी मुख पर स्याही,
पास में बेटी आयी।
मैंने पूछा क्या करती थी,
कहने लगी पढ़ाई।

जाओ बेटी देखकर चेहरा,
तुम दर्पण में आओ।
फिर कैसे लगती हो बेटी,
आकर मुझे बताओ।

देखकर चेहरा को दर्पण में,
पास में मेरे आयी।
पापा यह सब किया है इसने,
लाकर कलम दिखायी।

पापा उस दिन कहा था मैंने,
एक कलम ले आना।
अब यह काम नहीं करता है,
घिसकर हुआ पुराना।

इसे ठीक करने में पापा,
लग गयी मुँख में स्याही।
तीन दिसम्बर से होने वाला,
है इम्तहान छमाही।

बेटी तुमने कहा नहीं क्यों,
फिर मुझसे दुबारा।
इसी कलम से करती आयी,
बेटी काम तुम सारा।

भूल आप नहीं पापा सकते,
यह मैं जान रही हूँ।
कोई विवशता आपकी होगी,
बस यह मान रही हूँ।

बेटी मेरी भूल नहीं यह,
बहुत बड़ी गलती है।
पर अपने पापा को बेटी,
माफ भी कर सकती है।

बेटी लिपट गयी तब मुझसे,
आप भी क्या कहते हैं?
बेटी जो है गलत उसे,
हम सिर्फ गलत कहते हैं।

15–2–11

आज के मित्र

कौआ ने तोता को जिस दिन,
अपना मित्र बनाया।
मारे खुशी के उस दिन तोता,
फूला नहीं समाया।

बच्चे भी खुश हुए जब कौआ,
उनके घर में आया।
परिचय अपने नये मित्र का,
वह सबसे करवाया।

तरह–तरह के व्यंजन तोता,
कौआ को करवाता।
आये दिन कौआ तोता के,
घर अक्सर आ जाता।

नये मित्र ने बढ़ा दिया था,
तोते को परेशानी।
बेटी बोली हुआ क्या आगे,
पापा कहो कहानी।

एक रोज फिर बेटी तोता,
कौआ के घर आया।
कौआ ने परिवार से अपने,
तब परिचय करवाया।

पानी पीकर तोता बोला,
सुन्दर सदन तुम्हारा।
कौआ बोला मित्र स्वर्ग से,
यह घर मुझको प्यारा।

तोता बैठा खाने को,
भोजन की थाली आयी।
मीट को देखा जब थाली में,
बुद्धि तब चकरायी।

उठ गया तोता कहा मित्र से,
मीट नहीं मैं खाता।
कौआ बोला बिना मीट के,
मैं नहीं कौर उठाता।

लगा आघात बड़ा तोता को,
शब्द न मुख से आया।
हाथ जोड़कर नमन को कहकर,
अपने घर में आया।

कौआ ने अपनी चतुराई,
बच्चों को बतलाया।
कई महीनों से तोता का,
माल मुफ्त में खाया।

कल से ही किसी नये मित्र की,
फिर से खोज करूँगा।
फँसा–फँसा कर नये मित्र,
जीवन भर ऐश करूँगा।

अपनी पूरी आमदनी,
बच्चों पर खर्च करूँगा।
मैडम देखना एक रोज,
मंत्री पद प्राप्त करूँगा।

मित्र का मिलना बहुत कठिन है,
करें न कभी नादानी।
इसके आगे की बेटी,
आती नहीं मुझे कहानी।

15–2–11

छुट्टी का दिन

होती जब स्कूल में छुट्टी,
बेटी घर में रहती।
कहीं बैठती एक मिनट न,
उछल–कूद बस करती।

क्या करती हो किसलिये करती,
माँ से पूछा करती।
झुंझला जाती माँ बेटी का,
कान पकड़कर कहती।

परेशान मुझे क्यों करती है,
बहुत काम करना है।
काम बताती यदि तुझे कोई,
तो कहती पढ़ना है।

अब यदि एक बार भी टोका,
तो थप्पड़ मारूँगी।
मचा तहलका तब तू घर में,
पूरे दिन गायेगी।

बेटी बोली काम बताओ,
काम से क्या डरती हूँ।
प्यारी मम्मी यह कहो मत,
मैं बहाना करती हूँ।

माता बोली काटकर सब्जी,
रखो मैं आती हूँ।
पहले कपड़ा को धो लूँ,
फिर सब्जी बनाती हूँ।

अँगुली काट लिया बेटी ने,
पापा कह चिल्लायी।
डाक्टर के तब पास में जा,
करके पट्टी करवायी।

काट रही सब्जी क्यों तुम थी,
बेटी मुझे बताना।
पापा आप चाहते हैं क्या,
मम्मी से पिटवाना।

भार्या ने कुछ कहना चाहा,
कहा मैं फिर बतलाना।
पहले अपने हाथ खिलाओ,
तुम बेटी को खाना।

16–2–11

माँ–बेटी

बेटी से मुझे प्यार रहा है,
सदा पुत्र से बढ़कर।
पर मैं खोज नहीं पाया है,
क्या है इसका उत्तर।

लेकिन लगता है तुमको भी,
बेटी बहुत है भाती।
हो गयी इतनी बड़ी मगर,
अब तक हो दूध पिलाती।

कितना समझाऊँ इसको पर,
जिद यह सदा है करती।
मम्मी मम्मी सुन करके,
मैं भी बस में नहीं रहती।

मिलता है संतोष मुझे,
तुमसे भी क्या छिपाना।
उर में जब वात्सल्य उमड़ता।
वह सुख बड़ा सुहाना।

ममता की बहती धारा में,
गति एक सम ही रहती।
बेटा–बेटी का अंतर,
भ्रमवश बुद्धि है करती।

अच्छा तुम अब प्रश्न न करना,
चाहता शून्य में जाऊँ।
बिना एकान्त के शून्य कहाँ है,
तो फिर अब मैं जाऊँ।

आलोकित बिन किये मेरा पथ,
प्रिये कैसे जाओगी।
अपनी कृपादृष्टि से मुझको,
आज न नहलाओगी।

बना पहेली मत उलझाओ,
कहो क्या करना होगा?
सिर्फ तुम्हें अपने नेत्रों का,
स्वयं मूँदना होगा।

आँख बंद करके वह बोली,
अब कुछ नहीं दिखलाता।
किन्तु मेरे होने का यहाँ,
अहसास तुम्हें क्या न आता।

तुम्हीं बताओ क्या मैं तुमसे,
इस जीवन में भाग सकूँगा।
कहीं रहूँ किस तरह रहूँ,
बस केवल तेरी याद करूँगा।

सोकर बेटी उठी तभी, अरु,
मम्मी–मम्मी करते आयी।
आँचल डाल दिया तब माँ ने,
उर सिज से उसे लिया लगायी।

हुआ सराबोर मेरा हिय भी,
डूबा पर ले थाह न पाया।
होकर विवश अन्ततः मन ने,
माँ–बेटी को शीश झुकाया।

17–2–11

खेत सींचने

पीले–पीले पुष्प सरसों के
लगते कितने अच्छे।
छोटे छोटे बने हुए हैं,
पापा कितने गुच्छे।

फूलों का गुनगान बाद में,
बतलाना मुझे बेटी।
पानी बहता रहा नाली से,
तुम थी कहाँ पर बैठी।

मैंने दिखलाया बेटी को,
जहाँ कटी थी नाली।
आधे खेत में भरा था पानी,
आधा खेत था खाली।

बेटी बोली पापा मुझसे,
भूल हो गयी भारी।
पर मम्मी से न बतलाना।
पापा विनय हमारी।

ठीक है बेटी पर बतलाओ,
कहाँ रहा ध्यान तुम्हारा।
खेत सींचने तुम आयी थी,
देने मुझे सहारा।

सच बतलाती हूँ मैं पापा,
यह पुस्तक थी लायी।
इसको पढ़ते–पढ़ते मैं,
इस पुस्तक में थी खोयी।

इसको भूल नहीं कहते हैं,
मेरी प्यारी बच्ची।
आज जगत में तुम ही मुझको,
लगती सबसे अच्छी।

जैसे ऋतुओं में बसन्त,
सबके मन को है भाता।
वैसे तुम्हें देखकर उर भी,
फूलों–सा खिल जाता।

दौड़कर बेटी गयी खेत में,
जोर से बोली बानी।
पापा अब बहने नहीं दूँगी,
एक बूँद भी पानी।

18–2–11

प्रपंच

कँधे पर बेटी को पारे,
चक्कर रहा लगाता।
सो जाओ मेरी प्यारी बिटिया,
थपकी दे समझता।

देखो चिड़ियाँ सारी थककर,
अपने नींड पर सोयीं।
गाय के संग में बैठी बछिया,
वह भी नींद में खोयी।

सोते हैं चुपचाप पड़े भी
बंद हुई सरसराहट।
इसीलिए तो दूर से आती,
पड़ती सुनाई आहट।

जब तक मैं उससे बतलाता,
तब तक सुनती जाती।
जैसे ही मैं चुप हो जाता,
मम्मी कह चिल्लाती।

आती ही तेरी मम्मी होगी,
अब तुम चुप हो जाओ।
अगर लगी हो भूख तो बेटी,
वह भी मुझे बतलाओ।

थपकी देते–देते उस पर,
निद्रा किया सवारी।

इतनी देर कहाँ पर कर दी,
बात बताओ सारी।

तब भार्या ने मुझे बताया,
मिली श्यामू की अम्मा।
इसीलिये तुम खड़ी हो गयी,
बाग में बनकर खम्भा।

कितनी बार कहा तुमसे,
बेकार प्रंपच की बातें।
मैं करता बिल्कुल यकीन न,
जो अफवाह की बातें।

पूरे गाँव में यह चर्चा है,
मर्द भी हैं बतलाते।
पर तुम हो जो इन बातों को,
व्यर्थ की बात बताते।

परेशान जैसे तुम करती,
वैसे ही यह बिटिया।
बंद करो यह बात,
सुला दो अब बेटी को खटिया।

बेटी सुलाकर आकर बोली,
क्या कहते थे बताओ।
देवी हो गया भूतकाल जो,
उसे भूल अब जाओ।

19–2–11

ननिहाल

गर्मी का अवकाश बिता,
ननिहाल से बेटी आयी।
मैंने पूछा शहर में बेटी,
क्या–क्या देखकर आयी?

चींटी की तरह शहर में पापा,
लोग घरों में रहते।
नाली में ज्यों पानी बहता,
लोग सड़क पर बहते।

जैसे झीली झींगुर यहाँ पर,
हार्न वहाँ पर बजते।
हवा की सरसराहट न वहाँ पर,
सरपट वाहन भगते।

रंग–बिरंगी सजी दुकानें,
पापा वहाँ दिखाती।
रात अमावस की भी पापा,
पूनम–सी हो जाती।

प्रसिद्ध शहर के स्थानों को,
मामा मुझे घुमाया।
जिन्हें देखकर पापा मेरे,
मन को अचरज आया।

मैंने देखा फुटपाथों पर,
पापा लोग हैं सोते।
नंगे बदन में छोटे बच्चे,
भीख माँगते रहते।

गन्दे नाले की दुर्गन्ध से,
सटकर लोग हैं रहते।

एक लोटा पानी के लिए,
घण्टों लाइन में लगते।

एक तरफ शानदार इमारतें,
गगन से बातें करतीं।
तरफ दूसरी झुग्गियों में,
भेड़–सी जनता रहती।

मामा के घर पापा नाश्ता,
सुबह ब्रेड का होता।
जितना अपनी बछिया खाती,
उतना चावल बनता।

एक दो करके पापा मामी,
गिनकर रोटी बनाती,
जीभ को सुख देने वाला ही
भोजन सदा वे खाती।

मामी दिन में चार बार तक,
चाय बना कर पीती।
बिटिया यह कर वह कर मुझसे,
पापा कहती रहती।

एक दिन मैंने उन्हें बताया,
मैं घर काम न करती,
पापा कहते पढ़ो सिर्फ तुम,
मम्मी की नहीं चलती।

गाँव शहर में पापा मुझको,
दिखा न कोई अंतर।
हँसने वाला कहीं न सुनता,
रोने वाले का स्वर।

19–2–11

ज्ञान की शक्ति

पापा बच्चे बतलाते हैं,
भूत पीपल पर रहता।
आधी रात के बाद निकलकर
बाहर घूमा करता।

अगर अकेले मिलता कोई,
करता उस पर सवारी।
देह में पैदा कर देता है,
पापा वह बीमारी।

डाक्टर भी उसका कोई,
इलाज नहीं कर पाता।
भूत भगाने की क्षमता,
कोई सिद्ध पुरुष ही रखता।

पापा आप बता सकते हैं,
भूत ये कैसा होता।
इतना डर लोगों के अंदर,
भूत से क्यों है होता?

बेटी मेरा मन कहता है,
भूत एक बस भ्रम है।
सृष्टि का कारण क्या है अब तक,
सुलझ न पाया मर्म है।

धर्म का भी व्यापार शक्ति अरु,
धन से होता आया।
धर्म नहीं केवल शक्ति का,
ध्वज ही सदा फहराया।

सदियों से मानव के मन में,
जो भरा हुआ अँधेरा।
बिना ज्ञान के नहीं मिलेगा,
मन को कभी सबेरा।

जब तक धर्म की दीवारों में,
मानव बंद रहेगा।
दीवारों का उठना–गिरना,
चलता यहाँ रहेगा।

यह एक दम निश्चित है बेटी,
जिसमें शक्ति रहेगी।
दुनिया में सदा उसी की पूजा,
है अरु होती रहेगी।

बेटी बोली पापा क्या हम,
भूत–प्रेत को मानें।
सर्वप्रथम क्या सत्य है बेटी,
तथ्य को इस पहिचानें।

असली सूरत दुनिया की,
इन नजरों से नहीं दिखती।
सही का निर्णय यदि कर सकती,
तो वह ज्ञान की शक्ति।

कितना अच्छा होता यदि,
पापा तुम टीचर होते।
बच्चों के मन–मस्तिष्क को,
जगमग जगमग कर देते।

20–2–11

नादानी

बहुत खोजकर भी बेटी को,
जब मैं कहीं न पाया।
होकर विवश पास भार्या के,
तब मैं वापस आया।
बेटी का तुम ध्यान कभी भी,
बिल्कुल ही नहीं रखती।
कुछ भी कहूँ मगर कब तुम हो,
मेरी बात समझती।
खाना को दिया छोड़,
साइकिल को जब हाथ लगाया।
भार्या बोली कहाँ चल दिये,
मुझको नहीं बताया।
चली गयी कहीं खेत में न हो,
वहाँ देखकर आऊँ।
मिल जाये यदि आज उसे,
अच्छी प्रकार समझाऊँ।
पापा कह पर्यंक नीचे से,
उस क्षण बेटी निकली।
मैंने पकड़ा कान कहा सुन,
मेरी प्यारी तितली।
तरह–तरह की शंकाओं में,
उलझी बुद्धि हमारी।
आज तो बेटी मेरे प्राण को,
दिया कष्ट तुम भारी।
माता बोली आज इसे,
बिना मारे न छोड़ूँगी।
दूँगी ऐसी सजा सबक,
न जीवन भर भूलेगी।
बेटी तूने किया आज है,
बहुत बड़ी नादानी।
भूल नहीं सकता जीवन में,
तेरी यह शैतानी।
सोचकर क्या छिपी आज थी,
मुझे बता दे सच्ची।
सजा नहीं कुछ तुझे मिलेगी,
सुन ले मेरी बच्ची।
मम्मी पापा में मुझे ज्यादा,
कौन प्यार है करता।
यही जानने को मेरा मन,
अक्सर रहता करता।
मूल्य प्यार का क्या होता है,
आँसू ही बतलाते।
बिना प्यार के कभी किसी के,
लिए न आँसू आते।
लेकिन पापा सच कहती हूँ,
निर्णय न कर पायी।
आप और मम्मी के मन को,
पीड़ा ही पहुँचायी।
इतनी छोटी होकर तू–
बातें ये कहाँ से पाती?
जहाँ पहुँचने की क्षमता,
मुझको भी नहीं है आती।
अब जीवन में कभी भी बेटी,
मत करना नादानी।
जिससे तेरे पापा को,
फिर बढ़ जाये परेशानी।

21–2–11

दरवाजा

एक मिनट भी नहीं बैठती,
घुटनों के बल दौड़ा करती।
जो भी मिलता हाथ में लेकर,
मुँह में बस अपने रख लेती।

कहीं न गिर जाये चौखट से,
माता उसे पकड़ती रहती।
थका मुझे देती यह बेटी,
बार–बार वह मुझसे कहती।

भार्या बोली नहा रही हूँ,
ध्यान जरा बेटी का रखना।
प्रियतम छोड़ दो अब पुस्तक को,
जीवन को भी सीखो पढ़ना।

उसी समय चौखट से गिरकर,
बेटी बड़े जोर चिल्लायी।
बाथरूम से दौड़कर माता,
तुरन्त पास बेटी के आयी।

गोद उठायी दूध पिलाकर,
किसी तरह से चुप करवाया।
आया क्रोध तब मेरे ऊपर,
किस पागल से ब्याह रचाया।

अक्ल नहीं तो कम–से–कम जो,
कहती हूँ उसे करते जाओ।
साया पहनकर खड़ी हुई हूँ,
बंद दरवाजा तो कर आओ।

21–2–11

पुण्य

घुटनों के बल आँगन भर में,
दिन भर बेटी घूमा करती।
माँ भी उसके पीछे हर पल,
परछाई–सी बनकर रहती।

गूँजा करती आँगन में,
बेटी की रह–रह किलकारी।
कभी चीख रही तो कभी रुदन,
कि आ जाती रहकर बारी।

सुबह के कब संध्या हो जाती,
पता नहीं दिन का चल पाता।
एक सुखद अहसास में डूबा,
चित् रहता हरदम हरषाता।

थककर जब बिटिया सो जाती,
तब लगता कुछ गुम हो जाता।
भार्या कहती कहाँ खो गये,
सुनकर ध्यान टूट मेरा जाता।

जरा ध्यान बेटी का रखना,
मैं जाकर पूजा कर आऊँ।
आप तो पूजा–पाठ न करते,
कम–से–कम कुछ मैं तो निभाऊँ।

जब तुम पूजा करने लगती,
मैं भी तो बेटी को खेलाता।
थोड़ा बहुत पुण्य–पूजा का,
मुझको भी तो मिल ही जाता।

ईश्वर से भी भक्त श्रेष्ठ है,
कहा गलत तो देना माफ़ी।
भक्त तुम्हारा ही बन जाऊँ,
मेरे लिये यही है काफी।

22–2–11

घुटनों के बल

शिशु घुटनों के बल चलने का,
शुरु करता है पहला प्रयास।
इसलिये की पशु से परिष्कृत हो,
मानव का होता है विकास।

इस कारण पशुता निकल–निकल,
आये दिन नर्तन करती है।
सभ्यता मूल्य संस्कृतियों का,
हँस–हँसकर मर्दन करती है।

लेकिन इन बातों से प्रियतम,
जीवन न कभी चल सकता है।
आदर्श मूल्य अच्छे लगते,
पर खा तो नहीं कोई सकता है।

मेरे शब्द का अर्थ समझने में,
तुम भूल कर रही हो प्यारी।
जीने का मतलब बस जीना,
होती न कभी है समझदारी।

जीने की कला के ज्ञान बिना,
जीवन तो चलता जायेगा।
लेकिन क्या तुमने सोचा है,
वह एक रोज टकरायेगा।

कोई माने अथवा न माने,
सबका अपना अपना है ख्याल।
जीने का पर कुछ मकसद है,
सोचना कभी यह भी सवाल।

सो करके बेटी तभी उठी,
मैं गोद में ले करके बोला।
जीवन को कोई न रख सकता,
चाहे हो बड़ा कितना थैला।

जीवन तो बहता रहता है,
बहकर के भी जो कह जाता।
उस ध्वनि को सुनकर कहता हूँ,
वह कर जो जग में रह जाता।

22–2–11

उस पल

उस पल सारी भूल धूप की गर्मी जाती,
जब उत्संग में आ मेरे बेटी मुस्काती।
उसे देखकर उड़ जाती सारी कड़वाहट,
उषा की फिर से आने लगती ज्यों आहट।

अपनी बेटी से जब मैं बतलाने लगता,
जाता तब मैं भूल कहाँ हूँ अरु क्या करता।
वह छोटी बच्ची इतना मेरे मन को भाती,
उसे देखकर के सारी पीड़ा मिट जाती।

उर में लहरें उठने लगतीं जब बाँहों में उसे झुलाता,
ऊहा पोह की स्थिति से तत्क्षण मन मुक्त मेरा हो जाता।
मनोहता हर लेती थी मेरी वह जाता,
पुलकित होता हृदय न मन आनन्द समाता।

छूटकर मेरे कर से बेटी,
एक दिन बड़ी तुम हो जाओगी।
मेरी कुटिया छोड़कर जब तुम,
अपने भवन चली जाओगी।

तब मैं खड़ा यहीं पर बेटी,
इस दिन को खोजता रहूँगा।
आज के दिन को बंद हृदय के,
एक कोने में सदा रखूँगा।

मैं क्या था यह जग वालों को,
तुम्हीं तो बेटी बतलाओगी।
मेरा बिम्ब तुम मेरे जैसी,
सारे जग में छा जाओगी।

23–2–11

बहाना

बैठी दीपक के प्रकाश में,
होमवर्क बेटी करती थी।
माँ छत पर बैठी पड़ोसिनी,
से हँस–हँस बातें करती थीं।

वे बातें मुझको ऐसे लगीं,
जैसे बिन बादल की वर्षा।
एक प्यास का ज्यों अहसास हुआ,
जाने किस के लिए मन तरसा।

क्यों खड़े हुए तुम पापा हो,
बेटी की मुझ पर नजर पड़ी।
लिखते–लिखते बेटी क्या तुम,
देखती कभी हो नहीं घड़ी।

बेटी चिल्लाकर के बोली,
माता जी अब नीचे आओ।
पापा कुछ कहना चाहते हैं,
कम–से–कम आकर सुन जाओ।

भार्या आकर नीचे बोली,
बोलो किसलिये बुलाते हो।
आठ बजते ही खाने के लिए,
बच्चे की तरह अकुलाते हो।

तुम ख्याल मेरा कितना रखती,
मैं अच्छी तरह जानता हूँ।
जो बना दिया उसे खा करके,
ठंडा पानी पी लेता हूँ।

जीने के लिए मैं खाता हूँ,
बना स्वाद का कभी गुलाम नहीं।
बच्चे के तरह जग में जीना,
देवी साधारण काम नहीं।

दिन भर जो स्वेद बहा करके,
थक कर के शाम को आता है।
जब पेट की आग सुलग रही हो,
संगीत कभी नहीं भाता है।

भार्या ने जल्दी–जल्दी में,
चूल्हे में मिर्च जला डाला।
फिर लगी छींकने बाहर आ,
बेटी ने रसोई सँभाला।

कल से मैं शाम के आठ बजे,
रख दूँगी बना करके खाना।
उपदेश मुझे फिर देने का,
ढूँढ़ना और कोई बहाना।

24–2–11

आजमाकर

यही सोचती रहती थी मैं,
जब बिटिया कुछ बढ़ जायेगी।
घुटनों से जब छोड़कर चलना,
पैर से चल कर दिखलायेगी।

काम मेरा तब कुछ कम होगा,
थोड़ी देर बैठ जाऊँगी।
बार–बार कपड़ा धोने से,
तब मैं फुरसत पा जाऊँगी।

बेटी चलने लगी पैर से, पर सोचा,
वह हो नहीं पाया।
काम पुराने खत्म हुए तो,
नये काम ने मुँह फैलाया।

पहले घर था अब द्वारे तक,
रखवाली मुझे करनी पड़ती।
अगर नजर कहीं चूक गयी तो,
बगिया तक जा करके पहुँचती।

लगी समझने और बोलने,
तब पापा की पकड़ी अँगुली।
जाते जहाँ वहाँ पर जाती,
घूमी गाँव की गली–गली।

खेत स्कूल बाजार साथ वह,
पापा के संग में थी जाती।
सोते–सोते रात में भी वह,
कभी–कभी मुझे पापा कहती।

एक दिन मैंने पूछा उनसे,
क्या बिटिया को जादू मारा
प्यार तुम्हें वह बहुत है करती,
पापा मुझको रात पुकारा।

जादू तो मैं नहीं जानता,
पर इतना अवश्य हूँ करता।
बिटिया के संग खेलते–खेलते,
मैं भी बचपन में खो जाता।

बच्चों से बच्चों की तरह ही,
जिन्हें प्यार करना आता है।
जो दिल को न कभी दुखायें,
वह भाषा जो अपनाता है।

कभी डराकर या झुँझलाकर,
मत बिटिया को पाठ पढ़ाना।
भूलकर पापा कहेगी मम्मी,
आजमाकर मुझको बतलाना।

24–2–11

कभी– कभी देख ले भी नीचे

पापा आपने बतलाया था,
सब ठोकर खाकर गिरते हैं।
फिर उठते हैं और चलते हैं,
इसको ही जीवन कहते हैं।

उठते–गिरते चलते रहने में,
ही जीवन कट जाता है।
हम गिरते क्यों यह बात समझ,
आखिर क्यों हमें न आता है।

चेहरों को पढ़ने में बेटी,
अक्सर धोखा हो जाता है।
भावनाओं में बह करके भी,
निर्णय न सही हो पाता है।

भावुक मन सदा भीग जाता,
मृदु वाणी की वर्षा पाकर।
आत्मीयता पाने से करुणा,
हो जाती हृदय से बाहर।

जब प्यार उमड़ आता उर में,
तब साफ नहीं दिखलाता है।
क्या उसने भी मुझे प्यार किया,
यह थाह न कोई लगता है।

गहराई का बिना ज्ञान किये,
हम कूद तो जल में जाते हैं।
पर एक दिशा में एक साथ,
हम तैर कभी नहीं पाते हैं।

व्यक्तित्व समझना सरल नहीं,
लेकिन फिर भी न असम्भव है।
विश्वास किसी पर भी न करें,
क्योंकि यह शब्द निरर्थक है।

देखते रहे सब कुछ लेकिन,
कभी–कभी देख ले भी नीचे।
ठोकर तो पैर में ही लगेगा,
बेटी यह बात सदा सोचे।

26–2–11

अनुकरण

बेटी लो अंगूर को खाओ,
पहले पापा–माँ को खिलाओ।
आये दिन मम्मी चिल्लाती,
सुन लेती पर नहीं बताती।

बेटी की माँ पकड़ी चोटी,
क्या कहती वह बता तू छोटी।
चोटी तो छोड़ो महतारी,
कथा सुनाऊँगी तब सारी।

मौका पाकर बेटी भागी,
माँ भी उसके पीछे लागी।
बच्ची के पीछे तुम बच्ची,
लगी आज तुम सचमुच अच्छी।

उसने कहा तुमने सिखाया,
मान कर मैंने सर को झुकाया।
तभी दौड़ कर बेटी आयी,
माँ को सारी बात बतायी।

सुनकर उसकी माँ मुस्कायी,
उसको अपने गले लगायी।
माँ ने अपनी गलती मानी,
अब न कहूँगी कभी कहानी।

बच्चे सदा अनुकरण करते,
माँ अरु बाप जिस पथ पर चलते,
पहले अपना चरित निखारें,
फिर बच्चों की ओर निहारें।

27–2–11

खेल

गला पकड़ मेरा बेटी कहती,
पापा मुझको जरा घुमाओ।
घुमड़ी खाकर बैठकर कहती,
अब पापा मुझे घर पहुँचाओ।

जब मैं उसे उठा घर लाता,
तब कहती एक बात बताओ।
मैं कहता तब थका हुआ हूँ,
अब बिटिया न मुझे सताओ।

इतना सुनते उसकी सारी,
जैसे चंचलता खो जाती।
गुमसुम उसे देखकर मेरे,
मन में एक टीस उठ जाती।

तब मैं उसे लगाकर उर से,
अपने मन की टीस मिटाता।
बेटी से मैं झूठ कह दिया,
सोच–सोच करके पछताता।

यदि पापा तुम थके नहीं हो,
तो फिर चलकर बाहर खेलें।
मुझे गोद ले खड़े हुए हो,
सोच रहे क्या कुछ तो बोलें।

तन्द्रा टूट गयी तब मेरी,
कहा चलो चलें बाहर खेलें।
बचा बहाना सिर्फ एक था,
जिसके बल पर खुद को भूले।

बाहर आकर बेटी के संग,
शुरू हुआ फिर खेल जो अपना।
मेरे जीवन का वह सच था,
या था बस वह केवल सपना।

कुछ भी हो पर अब भी मुझको,
याद मुझे वह गुड़िया आती।
उसके संग के बीते पल में,
जीवन की मुझे राह दिखाती।

24–3–11

नयी बात

पापा आकर बाहर देखो,
कैसा सुन्दर हुआ नजारा।
रिमझिम–रिमझिम बादल बरसे,
झूम उठा लगता जग सारा।

मैं आकर बेटी से बोला,
वर्षा तो आती–जाती है।
बता मुझें क्यों यहाँ बुलाया,
नयी बात क्या दिखलाती है?

नयी बात तो पता नहीं,
पर एक बात मुझे दिखलाती है।
इस वर्षा से नहाकर धरती,
क्या यह नयी न हो जाती है।

वर्षा का जल पाकर कितने,
नये–नये अंकुर उग जाते।
मौसम का परिवर्तन सहकर,
इनमें से कुछ वृक्ष बन जाते।

ग्रीष्म का ताप मिटाकर वर्षा,
भू को दे जाती हरियाली।
कर देती रिक्तता पूर्ण सब,
नहीं देख पड़ती भू खाली।

जिनके पास नहीं हैं आँखें,
हरियाली नहीं उन्हें दिखाती।
कोई देखे या न देखे,
पर गीला तो तन कर जाती।

बतलाती अनुभूति ही हमको,
कहाँ देखने में की गलती।
पत्थर में है छिपी सुन्दरता,
पर वह सहज नहीं है दिखती।

जो तराश सकता हो इसको,
वह आगे बढ़ हाथ लगाये।
प्रकृति तो यह नयी नहीं है,
पर जीवों को नये बनाये।

पापा वर्षा की नवीनता,
यह मुझको है साफ दिखाती।
इतनी छोटी होकर भी तू,
बात कहाँ से यह सब पाती।

31–3–11

वात्सल्य की धारा

पालने में ले ले किलकारी,
मेरी तरफ देखती रहती।
नन्हें–नन्हें हाथ उठा कर,
संकेतों से बातें करती।

दुनिया की हर भाषाओं से,
यह भाषा होती है न्यारी।
पशु–पक्षी भी इसे अपनाते,
मुझे लगी यह अति सुखकारी।

घुँघराले बालों को छूकर,
मैं कहता अब चुप हो जाओ।
हाथ–पैर हिला थक जाओगी,
भूख लगी तो मुझे बताओ।

बेटी सुनकर के मुस्कायी,
माँ की पड़ी आवाज सुनायी।
भूल गये आज सारा दर्शन,
लगता हो गयी व्यर्थ पढ़ाई।

तुमसे बहस नहीं मैं करता,
पर एक छोटी बात बताओ।
इस बेटी को देख रही हो,
कैसी लगती जरा बताओ।

प्रश्न समझ में मेरी न आया,
फिर मैं दूँ क्या इसका उत्तर।
जो तुम देख रहे वह मैं भी,
पालने में बेटी मेरी सुन्दर।

हाथ–पैर इसका हिलता है,
पर लगता मेरे मन के अंदर।
जैसे कुछ प्रकम्प हो रहा,
जिसका नहीं दे सकता उत्तर।

प्रेम–ज्ञान की धाराओं से,
भी उज्वल वात्सल्य की धारा।
जहाँ पर तीनों का हो संगम,
वह ही है प्रयाग हमारा।

यह प्रयाग जिस भी मानव को,
जीवन में यदि कहीं दिखाता।
उसे समझना फिर शायद कुछ,
शेष नहीं जग में रह जाता।

01–4–11

जरूरी

सागर में लहरों का आना,
शायद उसकी कमजोरी है।
भावों में जीवन का बहना,
जीवन की भी मजबूरी है।

भावों में बहकर के जीवन,
कुछ पल तो निर्मल हो जाता।
छल–छद्म द्वेष को तज करके,
सुख दुख से मुक्ति पा जाता।

एक छोटी–सी प्यारी बच्ची,
जो सदा मेरे मन में रहती।
उसकी किलकारी की वह ध्वनि,
मुझे आज सुनायी भी पड़ती।

मैं आज भी इतना दूर खड़ा,
फिर भी बेटी से दूर नहीं।
चित् में अब भी खेला करती,
छोटी–सी तनया अभी वही।

मैं भूल नहीं पाया वह दिन,
गोदी में जब मेरे आयी।
वह रोयी थी मैं विस्मित था,
जननी उस पल थी मुस्कायी।

फिर लगा खेलने मैं तुमसे,
अरु भूल गया यह खेल रहा।
जो खत्म एक दिन होता है,
देकर जाता संताप महा।

बेटी को भूल नहीं पाना,
मेरी आज बनी मजबूरी है।
उसके बचपन को लिये हुए,
रहना मेरे लिये जरूरी है।

उसके बचपन की क्रीड़ाएँ,
अब भी आह्लादित कर देतीं।
थक करके बैठता जब भी मैं,
गोदी में मचलने ज्यों लगती।

2–4–11

दुलार

बेटी का कर दुलार माँ, कहती हे लाड़ली।
जीवन के मेरे बाग की, तू ही तो है कली।
होती जब रात आती, तुम चाँद की तरह।
तुम मिल गयी तो, खिल उठा मन कमल की तरह।
उरसिज से जब लगी, तो लगा पूर्ण हो गयी।
अंदर जमी जो बर्फ थी, पिघली अरु बह गयी।
किससे कह अरु कैसे कहूँ, मेरी छोटी जान।
तुमसे ही तो होती रहेगी, कल मेरी पहचान।
फिर गोद में ले करके बेटी, चूमने लगती।
माथे पर फिर काजल की, एक बिन्दी को लगाती।
कुछ देर फिर खामोश, रही बेटी को उठाये।
क्या–क्या रही वह सोचती, हम समझ न पाये।
संयत हुई तो आ गयी, ओठों पर मुस्कराहट।
पहचान गयी दूर से, मेरे आने की आहट।
मेरे गोद में दे करके, बेटी यूँ लगी कहने।
नारी की भी क्या जिन्दगी, देखा है आपने।
मैने कहा मैं देखता, जो सहज न दिखता।
पर क्या करूँ इसे देखकर, भी लिख नहीं सकता–
अज्ञान का आवरण, मानव ने बनाया।
जिसके तले नारी दबी, वह धर्म कहलाया।
अंधविश्वास अरु अज्ञानता, में लिपटी मानवता।
दुर्भाग्य है जो समझता, वह भी विवश दिखता।
मुर्दे की तरह ओढ़े, मैं भी तो हूँ कफन।
आगे न अब एक शब्द भी, कहना मेरे सजन।

2–4–11

वृक्ष

जेठ की भीषण पड़ रही गर्मी,
भोजन करके छत पर आया।
लेटा था कि पापा कहकर,
बेटी ने मुझको चौंकाया।

पापा आज सुना दो मुझको,
बस छोटी–सी एक कहानी।
तब तक मैं पंखा झलती हूँ,
बैठ गयी कह कर यह बानी।

उसके हाथ से लेकर पंखा,
पास में मैंने उसे लिटाया।
शीश पर उसके हाथ फेरकर,
तब उसको यह कथा सुनाया।

एक पंडित ने द्वार पर अपने,
बेटी एक दिन आम लगाया।
पास उसी के एक बबूल भी,
नन्हा–सा एक दिन उग आया।

लकड़ी का एक कवच बना कर,
आम के चारों तरफ लगाया।
प्रतिदिन देता उसमें पानी,
पर बबूल का ध्यान न आया।

आम से दूर न वह बबूल था,
उसको भी भोजन मिल जाता।
दोनों साथ–साथ लगे बढ़ने,
पंडित जिन्हें देख हर्षाता।

बेटी एक दिन आँधी आयी,
आम का सारा कवच उड़ाया।
तभी भैंस एक वहाँ पर आयी,
जड़ समूल वह पौधा खाया।

हुआ कष्ट यदि पंडित को,
पर उसने सिर्फ शोक मनाया।
फिर उस जगह पर नहीं दुबारा,
आम का उसने पौधा लगाया।

समय एक दिन चलते–चलते,
उस बबूल को वृक्ष बनाया।
पंडित भी उसकी छाया में,
बेटी बैठा मुझे दिखाया।

बेटी बोली पापा बताओ,
ऐसा क्यों मन को हो जाता।
सद्गुण की करनी पड़ती रक्षा,
दुर्गुण अनायास आ जाता।

3–4–11

पाठ

किलकारी भरती चिल्लाती,
घुटनों के बल दौड़ा करती।
जननी उसके पीछे हर दम,
लगी हुई छाया–सी रहती।

पकड़ गोद में जब माँ लेती,
तो फिर सारी शक्ति लगाती।
असफल होते जब प्रयास सब,
तब रोने की बारी आती।

तब माँ मुझे बुलाकर कहती,
देखो क्या है बिटिया करती।
सारे दिन मुझे दौड़ा–दौड़ाकर,
थका मुझे यह गुड़िया देती।

माँ की गोद से लेकर बेटी,
तब मैं उसे द्वार पर लाया।
परेशान न माँ को करना,
बेटी को मैंने समझाया।

माँ तब मेरे पास में आयी,
बोली क्या बेटी को सिखाते।
पाठ न जो तुम खुद पढ़ पाये,
क्या पाठ बेटी को वही पढ़ाते।

शब्द का ज्ञान नहीं बिटिया को,
फिर कैसे जानेगी भाषा।
इसलिये सुता को समझाने हित,
खोजो कोई नयी परिभाषा।

जो समझ में सबकी आ जाये,
परिभाषा कभी न बन पायी।
जो सही मेरे मन ने माना,
वह दृष्टि तुम्हें भी क्या भायी?

मतभेदों के भी बावजूद,
हाँ! प्रेम ही एक ऐसी भाषा है।
कुछ नहीं तो कम–से–कम मन को,
देती जो रही दिलासा है।

यह वही प्रेम की भाषा है,
जिससे बिटिया समझाता हूँ।
सच है न जिसे मैं जान सका,
वह तुमको आज बताता हूँ।

कारण है जहाँ पर लगा मुझे,
कुछ झिलमिल–झिलमिल करता है।
प्रिये तुमको साफ दिखा पाऊँ,
जाने क्यों मेरा मन कहता है।

6–4–11

गूँजा करती मेरे आँगन में

गूँजा करती मेरे आँगन में,
बेटी की रह–रह किलकारी।
तम से आच्छादित मानस में,
भर देती मेरे उँजियारी।

पापा कहकर मेरे उर से,
ज्यों लिपट लता–सी जाती थी।
बाहों से झुलाता जब झूला,
तब मंद–मंद मुस्काती थी।

दो–दो दाँतियों की मुस्कराहट,
इतनी मोहक दिखलाती थी।
सुख–दुख द्वन्द्वों से मुक्ति बुद्धि,
उस पल विशुद्ध हो जाती थी।

माँ कहती कहाँ खो गये हो,
सुनकर भूतल पर आ जाता।
बेटी को ही तो खेला रहा,
क्या तुमको नजर नहीं आता।

वह तो मैं भी हूँ देख रही,
पर ध्यान न यहाँ तुम्हारा है।
किसके चिन्तन में खोये हो,
क्या वह मुझसे भी प्यारा है।

तुमसे प्यारा मुझे क्या होगा,
तुम स्वयं सोचकर बतलाना।
यदि उत्तर नहीं खोज पाया,
तो फिर क्या तुम मुझको जाना।

नूतन अनुभूति मेरे मन को,
बेटी यह तुम्हारी करवाती।
भावों के गंगा–यमुना में,
सच कहता बरबस ले जाती।

तुम–सा सुन्दर यदि और कोई,
मेरे मन पर छा जायेगा।
तो निश्चित वह बेटी होगी,
या बेटी–सा दिखलायेगा।

9–4–11

सौन्दर्य

माँ हाथ पकड़ करके,
बेटी को चलाती।
देती फिर हाथ छोड़,
कहती क्यों नहीं आती?

कुछ देर खड़ी रहकर,
धीरे –धीरे चलती।
आती जब माँ के पास,
तब माँ चूमने लगती।

पैरों से चलते देख बेटी,
माता मुस्काती।
मारे खुशी के उस समय,
न फूली समाती।

थक जाये न बेटी कहीं,
माँ तब उठा लेती।
गोदी में लेकर फिर उसे,
पय पान कराती।

नहला बदलकर वस्तु,
केश को सँवारती।
बेटी के काम में स्वयं का,
ध्यान न रखती ।

बेटी को लेकर गोद में,
जब भाव में बहती।
उसके खिले चेहरे पर ऐसी,
मोहकता दिखती।

हो जाता तब गद्–गद हृदय,
रोमांच आ जाता।
माँ–बेटी के उस रूप में,
सौन्दर्य दिखलाता।

10–4–11

उत्तर

माँ शाम बनाती जब खाना,
बेटी तब साथ मेरे रहती।
बातें करते–करते मेरे सीने,
के ऊपर सो जाती।

फिर भी मैं उसे उठा करके,
बिस्तर पर नहीं लिटाता था।
बेटी के साथ–साथ मैं भी,
निद्रा की गोद चला जाता था।

भार्या आ करके जगाती तब,
चलो उठो बन गया है खाना।
बच्ची के साथ–साथ तुम भी,
चाहते हो बच्चा बन जाना।

बेटी को उठाकर गोदी में,
कहती चल उठ खा ले खाना।
सोने के बाद न उठती वह,
यह नियम था उसका पुराना।

तब दूध पिलाकर बेटी को,
कहती तुम्हें उठा न पाऊँगी।
चलो उठो देर हो गयी बहुत,
कल मैं खाना शीघ्र बनाऊँगी।

लेकिन प्रिय कब कल आयेगा,
मुझे इंतजार रहता जिसका।
धीरे से तब वह हँस देती,
मुझे मिल जाता उत्तर उसका।

17–4–11

वह ध्वनि

वह ध्वनि जिसको सुन करके मन,
फिर उस ध्वनि में खो जाता था।
वह बेटी की किलकारी थी,
जिसे कभी भूल मैं नहीं पाता।

गोदी में उसके आते ही,
सारी थकान मिट जाती थी।
जग की सारी मुझे मनोरमा,
उस बिटिया में दिखलाती थी।

पापा मम्मी ने कहा है यह,
आकर मुझको बतलाती थी।
माँ ने आकर सुन लिया कहीं,
तो गोद मेरी छिप जाती थी।

देखूँ कब तक तू छिपती है,
माँ यह कहकर जब चलती थी।
तब उतर गोद से वह मेरी,
माँ की गोदी में चढ़ती थी।

चढ़ करके मेरे कंधे पर,
हाथों को हिला करके कहती।
पापा आकाश में चिड़ियाँ यों,
पंखों को फैलाकर उड़ती।

तू भी जा उड़ जब मैं कहता,
तब कहती मेरे पंख कहाँ।
कंधे से उतार के तब गोदी,
उसका मुख मैं देखता रहा।

उस पल जो बोध हुआ मुझको,
मन में अब भी वह समाया है।
इसलिये मुझे किसी चेहरे ने,
अब तलक नहीं भरमाया है।

12–4–11

सहारा

चिड़ियों का चहचहाना,
फूलों का मुस्कराना।
वायु की सरसराहट,
आती जो उससे आहट।

वह कुछ तो है बताती,
जो तुम रही छिपाती।
यदि जान मैं उसे जाता,
जाने कहाँ को जाता।

बेटी को मुझको देकर,
धीरे से मुस्कुरायी।
मैं प्रश्न आपका ही,
प्रियतम समझ न पायी।

अच्छा हुआ कि तुमने,
यह प्रश्न ही न जाना।
तुम जानती न जिसको,
उत्तर वही मैं माना।

मैं आपकी पहेली,
यह बूझ तो न सकती।
जीवन क्या कम पहेली,
सुलझा जिसे तुम सकती।

तुम में ही तो छिपा है,
आश्रय कहीं हमारा।
मैं खोजता हूँ उसको,
लेकर तेरा सहारा।

तुम समझो या न समझो,
मुझको समान लगता।
तेरी स्मित से सुन्दर,
जग में नहीं कुछ दिखता।

झूठी प्रशंसा करना,
यह आप कब से सीखा?
आँखों को बंद करके,
जिस रोज तुमको देखा।

रोने लगी तभी बेटी,
कंधे से मैं लगाया।
भार्या गयी भवन में,
मैं द्वार पर चला आया।

बाहों के पालने पर,
बेटी लगा झुलाने।
हँसने लगी वह उस दम,
मैं भी लगा गुनगुनाने।

मन में उसके आया

धूल लगा करके कपड़ों में,
बेटी जब घर आयी।
माँ ने पकड़ा कान,
तो बेटी बड़े जोर चिल्लायी।

कितना समझाओ पर कब तू,
बात हमारी सुनती।
रोज–रोज कपड़े कर गन्दे,
मेरा काम बढ़ाती।

जैसे–जैसे बड़ी हो रही,
करती है शैतानी।
पर अब चलने कभी न दूँगी,
बेटी तेरी मनमानी।

आज नहीं छोड़ूँगी तुझको,
माँ ने हाथ उठाया।
मार न पायी पर बेटी को,
तब फिर गोद उठाया।

आया उमड़ हृदय के अंदर,
ममता का जो सागर।
लगी तैरने उन लहरों में,
क्रोध हुआ छू मंतर।

बेटी के बिखरे केशों को,
कर से लगी सँवारने।
चल तुझको नहला देती हूँ,
लगी उसे बहलाने।

पर बेटी मन सोच रही थी,
माँ का हृदय दुखाया।
अब मिट्टी में न खेलूँगी,
मन में उसके आया।

19–4–11

प्रश्न

मैं सोच रहा था मन–ही–मन,
क्या शब्द छलावा करते हैं।
जो कहना चाह रहा है मन,
वे शब्द नहीं क्यों मिलते हैं?

पापा खोये किस चिंतन में,
बेटी ने आकर प्रश्न किया।
एक प्रश्न ही हल मैं कर सका,
तुम और दूसरा प्रश्न किया।

पापा बतलाओ प्रश्न वह क्या,
जिसने आपको उलझाया है।
हर प्रश्न का उत्तर होता है,
आपने ही हमें सिखाया है।

बेटी कोई सच सम्पूर्ण नहीं,
जब प्रश्न मन को उलझाता है।
तब कभी–कभी यह जीवन भी,
एक प्रश्न सिर्फ रह जाता है।

बेटी भी एक प्रश्न ही है,
जिससे न मुक्त मन हो पाता।
चाहे वह किसी भी पद पर हो,
फिर भी तो प्रश्न यह रह जाता।

बेटी के मोह से बचने का,
बेटी बतलाओ तुम साधन।
कुछ देर खड़ी सोचती रही,
आखिर में हो गयी वह भी मौन।

इसका उत्तर यह हो सकता,
हर नारी को सम्मान मिले।
बेटा–बेटी में भेद न हो,
बहू–बेटी को सम प्यार मिले।

नारी की करुणा ममता ही,
मूल्यों को सींचती आयी है।
धरती पर नदियों–सी पावन,
नारी भी सदा दिखायी है।

पापा उत्तर संतोषजनक,
बेटी ने प्रकट विचार किया।
फिर भी जाने क्यों मेरा मन,
यह तथ्य भी न स्वीकार किया।

24–4–11

क्या देखते?

क्या देखते हो साहब,
कह करके मुस्करायी
बेटी को गोद लेकर,
चली पास मेरे आयी।

मैं देखता हूँ उसको,
जिसे देखता ही आया।
क्यों देखता हूँ लेकिन,
अब तक समझ न पाया।

कारण के बिना कोई,
कभी कार्य हो न सकता।
जो आप कहते साहब,
वह गले न उतरता।

अच्छा तुम्हीं बताओ,
हो सकता क्या वह कारण।
मैं चाह रहा निकलूँ,
डूबा है जिसमें यह मन।

सागर को तैर करके,
मुश्किल है पार पाना।
ले नाव का सहारा,
उस पार होगा जाना।

तुम जैसा और सुन्दर,
जग में न कुछ दिखाता।
तुम सामने हो तो फिर
कुछ और न रह जाता।

मेरी बात सुनकर झेंपी,
बोली बना रहे हो,
इतनी नहीं मैं सुन्दर,
जितनी बता रहे हो।

सुन्दरता यह न कहती,
मेरी है क्या परिभाषा?
सूने मन में भर देती,
जीने की किन्तु आशा।

तुमसे मैं तर्क करके,
क्या जीत कभी पायी।
जो सत्य मुझको लगता,
वह बात ही बतायी।

चलो आज कहीं घूमें,
मन भी लगा मेरा कहने।
बेटी को ले मैं बैठा,
लगी कार वह चलाने।

25–4–11

समझ के बाहर

मद मस्त पुरवाई बहती थी,
सन्ध्या शीतलता ले आयी।
लगता न पता कहाँ गया ताप,
मन में स्फूर्ति नयी छायी।

बेटी थी मेरे गोदी में,
इस समय मगर अलसायी थी।
दिन भर की भीषण गर्मी से,
राहत जो उसने पायी थी।

बेटी को घुमाते–घुमाते,
मैं लगा देखने एक सपना।
वह क्या है जिसको एक शब्द,
में कहूँ यही तो है अपना।

मन लगा घूमने दसों दिशा,
पर खोज नहीं कुछ भी पाया।
आखिर में होकर के अधीर,
फिर लौट जहाँ का तहाँ आया।

बेटी का आलस्य दूर हुआ,
तो उतर गयी वह भी नीचे।
कुछ फूल लगे थे द्वारे पर,
आओ पापा इनको सींचे।

हो गया स्वप्न भी मेरा भंग,
बेटी के संग खेलने लगा।
सपने न कभी सच होते हैं,
मेरा मन भी यह कहने लगा।

अब छिटक चाँदनी आयी जिसे,
बेटी हाथों में पकड़ रही थी।
उसकी यह बाल सुलभ क्रीड़ा,
मेरे न समझ में आ रही थी।

26–4–11

जंगल का न्याय

वनराज के दरबार में,
खरगोश जब आया।
आश्चर्य हुआ तब सिंह को,
उसे पास बैठाया।

निर्भीक होकर तुम कहो,
किस हेतु हो आये,
मेरे राज में लगता है कि,
तुम गये हो सताये।

खरगोश ने दरबार में,
अपनी व्यथा कही।
मन्त्री के पुत्र द्वारा,
असहनीय, यातना सही।

वनराज का मंत्री प्रमुख,
जो एक सियार था।
अपने विवेक बुद्धि से,
राजा का खास था।

मंत्री सुवन ने महाराज,
पत्नी मेरी खाया।
बोला खरगोश दरबार में,
न्याय के लिए आया।

मंत्री बोला पहले कोई,
गवाह ले आओ।
मेरे पुत्र पर झूठा न यूँ,
आरोप लगाओ।

मेरे आँख के ही सामने,
यह कृत्य है हुआ।
मैं हूँ प्रत्यक्षदर्शी इसका,
खरगोश ने कहा।

आश्चर्य है खरगोश तुम,
जिंदा कैसे आये।
पत्नी के साथ तुम भी वहीं,
क्यों गये न खाये।

महाराज हो चुका सिद्ध,
शशक झूठ बोलता।
भोजन को अपने पास पा,
कोई छोड़ न सकता।

वनराज बोले शशक तुमने,
झूठ है कहा।
पाओगे तुम इसकी सजा,
निर्णय मेरा रहा।

बेटी लगी कहने यह पापा,
कैसा न्याय है।
जो न्याय माँगे उसके साथ,
होता अन्याय है।

पुत्री जगत का सच यही,
कुछ भी न साफ है।
निर्बल को मिल सकता नहीं,
कहीं भी इंसाफ है।

27–4–11

पैसेन्जर ट्रेन

लगी बताने माँ को बेटी,
हुई मार्ग में क्या परेशानी?
भूसा जैसे ट्रेन भरी थी,
बदन से टपक रहा था पानी।

पापा मुझे कँधे पर चढ़ाकर,
खुद धक्का–मुक्का थे खाते।
घंटों ट्रेन खड़ी हो जाती,
मन कहता तब बस से आते।

शोर–शराबा इतना होता,
कुछ भी नहीं सुनायी पड़ता।
जल्दी आ जाये स्टेशन,
बस मम्मी मेरा मन कहता।

चाय मूँगफली खीरा ककड़ी,
वाले भीड़ में आ चिल्लाते।
लोग भी लेकर ऐसे खाते,
जैसे घर से भूखे आते।

मेरे बायें ऊपर सीट पर,
बैठी एक युवती ले बच्चा।
मम्मी उसने सू–सू कर दी,
उस पल आया मुझे बड़ा मजा।

लोग बिदक कर खड़े हो गये,
कहाँ से टपक पड़ा यह पानी।
बच्चे को कोई देख न पाया,
सबको हुई खूब हैरानी।

पता चला तब उस युवती को,
लगे कोसने नीचे वाले।
पापा ने सबको समझाया,
शिशु प्रभु में अंतर न डाले।

सीट को लेकर बीच–बीच में
मम्मी जी झगड़ा था होता।
एक उतरता कई बैठने
को आगे लड़ करके आता

पापा के कंधे पर बैठकर,
चार घन्टे का समय बितायी।
आया जब अपना स्टेशन,
जैसे कोई नयी निधि पायी।

पैसेन्जर गाड़ी से मम्मी,
कभी सफर तुम भी कर आओ।
हँसना–रोना लड़ना–झगड़ना,
गीत–भागवत सब सुन आओ।

27–4–11

कुंजी

प्यार जरूरत नहीं,
जिन्दगी की कुंजी है।
कितना भी करो खर्च,
नहीं घटती पूँजी है।

प्यार जिसे मिल जाये,
उसे कुछ चाह न रहती।
प्यार कि जिसके आगे,
फिर कोई राह न दिखती।

रहता न अस्तित्व–बोध,
जिसमें खो जाता।
होता ऐसा प्यार,
द्वन्द्व जहँ निकट न आता।

सुख क्या है?
यद्यपि सबका अपना विचार है।
प्यार में सुख तो नहीं,
सुखों का छिपा सार है।

प्यार पकड़ सका नहीं,
कभी कोई कोशिश करके।
मिल सकता है प्यार,
स्वयं को ही खो करके।

किया है जिसने प्यार,
वही जाना गहरायी।
नहीं समस्या उन्हें कोई,
विचलित कर पायी।

प्यार–सा धरती पर,
कुछ और नहीं हो सकता।
जो लेता यह जान,
भूल वह कभी न करता।

भार्या बोली लगता है,
देखा कोई सपना।
लगे प्यार का मंत्र,
सुबह उठते ही जपना।

कहती हो तुम सही,
रात एक सपना आया।
बेटी थी मेरी गोद,
मगर माँ ने तरसाया।

3–5–11

व्यर्थ

हे प्यार! हृदय में बसे रहो,
जिससे न भटक कहीं मन पाये।
मुझे हानि–लाभ का ज्ञान न हो,
तेरे बाँह में ऐसे खो जायें।

ये नेत्र देखते रहे सदा,
प्रिये की प्रकुल मुस्कान यूँ ही।
इससे बढ़कर सुख और भी है,
मुझे हुआ कभी अहसास नहीं।

जग की सारी मिल मनोरमा,
ज्यों सिमट प्यार में आयी है।
दुनिया की भी तस्वीर आज,
मुझे साफ–साफ दिखलायी है।

इस रंग बदलती दुनिया में,
कभी प्यार बदलता रंग नहीं।
जिसे प्यार मिला उसने जाना,
दुनिया का असली रंग सही।

संसार के सारे दोषों से,
मुझे मुक्त प्यार दिखलाता है।
यदि नशा भी तो इसमें खोकर,
कुछ शेष तो न रह जाता है।

प्रिय प्यार ही तो इस जीवन को,
करता आया कृत–कृत्य यहाँ।
पर जो यह सत्य न समझ सका,
उसको दिखता अंधकार रहा।

यह फ्राक बनाया बिटिया का,
मेरे हाथ में दे भार्या बोली।
कहती बाजार से ले आता,
बेकार में तुम श्रम कर डाली।

बेटी के लिए जो प्यार मेरा,
बाजार में क्या वह मिल जाता।
मेरे पास न था इसका उत्तर,
मुझे लगा व्यर्थ उसे समझाना।

8–5–11

भूल

तुलसी की पूजा करके,
माँ ध्यान को लगाया।
बेटी भी पास आयी,
चल करके तब बकइयाँ।

माँ का पकड़कर आँचल,
की उसने खींचा–तानी।
माँ डाल दिया उस पर,
लोटा का भरा पानी।

बेटी का रोना सुनकर,
मैं दौड़ करके आया।
वह दृश्य देख करके,
बेटी को मैं उठाया।

पछता रही थी माता,
किया भूल उसने भारी।
मेरे हाथ से ले बेटी,
कहती है बेटी 'सॉरी'।

कपड़े नये बदल कर,
बेटी को चुप करायी।
पूछा तब मैंने उससे,
बेटी को क्यों नहलायी?

पड़ती है इतनी सर्दी,
कहाँ ध्यान है तुम्हारा।
बीमार यदि हो जाये,
उड़ जाये चैन सारा।

पूजा मैं कर रही थी,
पीछे से चली आयी।
खींचा जब इसने आँचल,
निर्णय न मैं कर पायी।

पूजा करके तुम केवल,
मन की ही शान्ति पाती।
डूबें जब वात्सल्य में,
दुनिया ही न दिखाती।

9–5–11

नाम

एक चेहरा छू लिया मेरा मन, इसलिये नहीं की थी सुन्दर।
यौवन में भी उसके ऊपर, बचपन का था अभी बचा असर।

उस बाला के मुख मंडल पर, जो मुझे सरलता दिखलायी।
एहसास हुआ जैसे प्रथम बार, भव्यता नजर ऐसी आयी।

उसे देख कर आया मुझे याद, बचपन भी आह कितना उदार।
उमड़ा करते रहते मन में, गंगा की तरह पावन विचार।

रिश्ते नाते जग का व्यापार, जो ज्ञान सिखाया जाता है।
बचपन दब जाता इनके तले, बस व्यक्ति मात्र रह जाता है।

हर तरफ स्वार्थ छल–छद्म–द्वेष, विकराल विद्रूपता, छायी है।
अधरों केशों को रंग करके, लोगों ने यथार्थता छिपायी है।

ऐसे में देख उस बाला को, पाया मेरे मन ने विश्राम।
बरबस ही मुख से निकल गया, बेटी बतला दो अपना नाम।

10–5–11

मतलब

क्यों इस तरह से देखते,
जैसे कभी देखा नहीं।
जो बात है दिल की कहो,
मुझसे कोई परदा नहीं।

तुम ठीक कहती हो मगर,
हर बात कही जाती नहीं।
कैसे कहें उसे शब्द में,
बुद्धि समझ पाती नहीं।

तुम्हें देखकर सचमुच मुझे,
लगता कोई परदा नहीं।
कुछ खोजता तुम हूँ मैं,
जिसे आज तक पाया नहीं।

करते अजीब बात हो,
जो समझ में आती नहीं।
हर बात पर परदा गिरा,
कहते भी हो, परदा नहीं।

जो सत्य है उसे आज तक,
परदा छिपा पाया नहीं।
देखें मगर किसे किस तरह,
पर्दे का है मतलब यही।

बेटी तभी रोने लगी,
माँ कह गयी आती अभी।
वक्त जो जाता निकल,
वह लौट सकता न कभी।

14–5–11

कामना

फूलों की तरह चाहती,
मैं खूबसूरत बनना।
मम्मी की तरह चाहती,
मैं अपना काम करना।

चिड़ियों की तरह चाहती,
मैं गगन में विचरना।
बच्चे की तरह चाहती,
जीवन भर सदा रहना।

चंदा की तरह चाहती,
मैं चाँदनी फैलाऊँ।
शिक्षक की तरह चाहती,
बच्चों को मैं पढ़ाऊँ।

शंकर की तरह चाहती,
मैं ज्ञान को फैलाऊँ।
सूरज की तरह चाहती,
अंधकार को मिटाऊँ।

बंदर की तरह चाहती हूँ
शिशु से प्रेम करना।
कर्त्तव्य के लिए ही,
कर्त्तव्य चाहती करना।

लकुटी की तरह बनकर,
दुखियों के काम आऊँ।
बेटी की कामना है,
पापा का यश बढ़ाऊँ।

14–5–11

चूँ–चूँ

चूँ–चूँ करती रहती चिड़ियाँ,
कुछ बातें तो करती होंगी।
अपने बच्चों को वे पापा,
कुछ शिक्षा तो देती होंगी।

घोसले में किस तरह से रहना,
चिड़ियाँ उन्हें बताती होंगी।
चूँ–चूँ करके वे बच्चों को,
नित–नित पाठ पढ़ाती होंगी।

तभी तो बच्चे अपने नीड़ में,
पापा छिपकर बैठे रहते।
जब तक न आ जाती चिड़ियाँ,
तब तक चूँ–चूँ भी न करते।

उड़ना शुरू जब बच्चे करते,
तब भी चिड़िया साथ में होती।
थककर कहीं बैठ यदि जाते,
चूँ–चूँ कर उनको समझाती।

बच्चे भी चूँ–चूँ कर पापा,
मानो हामी भरते रहते।
चूँ–चूँ में जो अर्थ छिपा है,
कुछ–कुछ समझ तो हम भी लेते।

चूँ–चूँ का कुछ भी आशय हो,
मत बेटी का मुझको भाया।
मन:स्थल से लगा कर बेटी,
पीठ मैंने उसकी थपथपाया।

15–5–11

पतझड़

बदला दृश्य ही दिखलाता है,
बेटी जब पतझड़ आता है।
वृक्षों से पत्ते गिर जाते,
खड़े वृक्ष गुमसुम दिखलाते।

प्रकृति भी चिंतित हो जाती,
खामोशी हर तरफ दिखाती।
लगता खो गयी उसकी सारी,
सोच मग्न प्रकृति बेचारी।

वृक्ष के पास न पक्षी आते,
देख दूर से ही उठ जाते।
वायु न वृक्ष को आ सहलाती,
धूप न आकर गले लगाती।

आये यदि वर्षा भी सुहानी,
वृक्ष नहीं पी सकता पानी।
नहीं झूम सकता लहराके,
गा सकता कुछ भी न चाह के।

कल तक साथ–साथ जो रहते,
आज कुशल भी नहीं पूछते।
देख दूर से ही कतराते,
जैसे नहीं इसे पहचानते।

भूल गये सब बात पुरानी,
वृक्ष सुनायें किसे कहानी।
अपना सुख ही सभी खोजते,
दु:ख दूसरों का नहीं समझते।

24–5–11

ठेस

कार्तिक पूर्णिमा का प्रभात,
सरयू में लोग नहा रहे थे।
जो पाप जमा कर रखा था,
सरिता में उसे बहा रहे थे।

निश पाप अबोध एक बच्ची को,
माँ पकड़ कर डुबकी लगवायी।
मेरी दृष्टि पड़ी तो लगा मुझे,
उसकी सिहरन मुझ तक आयी।

यह कैसी धार्मिक मान्यता है,
नहीं समझ मेरी बुद्धि पायी।
पर बच्ची की ठंडी उस दम,
मनस्थल तक मेरे आयी।

क्या पता वात्सल्य में बहकर,
माता ने ऐसा कार्य किया।
उस बच्ची को भी पुण्य मिले,
माँ के मन ने स्वीकार किया।

क्या ममता से भी बढ़कर के
धार्मिक भावना होती है ?
यदि ऐसा है तो कहूँगा मैं,
तब तो बुद्धि ही सोती है।

है धर्म का बस उद्देश्य यही,
मानव को वह पथ दिखलाये।
कैसे चलना इस पथ पर है,
जिससे निर्णय वह ले पाये।

मानव की कोमल भावनाएँ,
जो धर्म के रंग से रँगते है।
नहीं ज्ञान, ज्ञान के बदले में,
धार्मिक भीरुता भरते हैं।

मेरा अपना मत कुछ भी नहीं,
हर व्यक्ति स्वयं यह खोज करें।
जो दूसरे को सुख दे न सके,
क्या धर्म उसे हम कहा करें?

माँ की इस धर्मभीरुता ने,
मन को मेरे ठेस है पहुँचाया।
उस छोटी–सी बिटिया के लिए,
उर में ममत्व उमड़ आया।

ममत्व वात्सल्य के प्रवाह,
में धर्म ठहर नहीं पाता है।
शिशु अपना है किस धर्म का है,
यह भेद कहाँ रह जाता है?

17–5–11

छवि

विद्वता प्राप्त कोई कर ले,
नम्रता स्वयं आयेगी।
सुन्दरता नहीं छिपेगी,
चाहे वह जहाँ रहेगी।

सुन्दरता को दिखलाये,
कभी भी विद्रूप न करके।
सोचे यदि सही लगे तो,
स्कंध को रखे ढँक के।

प्रकृति ने स्वयं बनाया,
सबसे अनिंद्य जब नारी।
वस्त्रों को कम करने से,
वह देखेगी न सुकमारी।

आधुनिकता का मतलब है,
अंधकार से बाहर आये।
शर्वरी में जैसे रहते,
दिन में न उसे दिखलाये।

नारी न पुरुष से कम है,
प्रमाण की नहीं जरूरत।
तुम यंत्र न बनो पुरुष की,
कायम रखो निज अस्तित्व।

इस रुप में देखकर तुमको,
तारीफ करें, कहें सुन्दर।
उनको न पता सुन्दरता,
बाहर नहीं होती अंदर।

जो सृष्टि का सत्य छिपा है,
वह सहज नहीं दिखलाता।
डूबे हम मगर कहाँ पर,
यह काम बुद्धि को आता।

करके प्रयोग बुद्धि का,
ऐसा व्यक्तितत्व बनायें।
जिसे देखकर मेरे मन में,
बेटी की छवि बन जाये।

19–5–11

परिवार

जीवन जहाँ से विकसित होता,
बनता जो पहला आधार।
प्रथम पाठ जहाँ पर शिशु पढ़ता,
होता वह अपना परिवार।

बच्चे के ऊपर पड़ता है,
परिवार का ही अमिट प्रभाव।
इसलिये है परिवार का दायित्व,
बच्चे को दे सुन्दर भाव।

जहाँ कलह अरु द्वेष–घृणा है,
वहाँ प्रेम नहीं रह सकता।
बिना प्रेम के भाव त्याग का,
पनप कभी भी न सकता।

सुख तो पाना सभी चाहते,
पर कर सकते त्याग नहीं।
अपने सुख से लिपटें ऐसे,
डर जाये न छूट कहीं।

जिस कुटुम्ब में यह मानसिकता,
वहाँ शान्ति न रह सकती।
शान्ति नहीं तो वहाँ जिन्दगी,
बस केवल घुटती रहती।

अपने लिये ही सब जीते हैं,
लेकिन यह सिद्धान्त नहीं।
दूसरों के लिए जीकर देखो,
मिले सहज संतोष वहीं।

अगर न यह सम्भव हो पाये,
तो फिर इतना काम करें।
अपने कलह–द्वेष के सर से,
बच्चे का न विनाश करें।

माँ अरु पिता परिवार सभी जन,
इन बातों पर ध्यान धरें।
बच्चे के सामने कभी भी,
कटुता की न बात करें।

कम–से–कम मानव होने का,
कुछ प्रमाण तो दिखलायें।
भविष्य बने जिसमें बच्चे का,
रास्ता उन्हें वह दिखलायें।

बेटी बोली सभी जानते,
पापा आप जो बतलाया।
पर इतनी छोटी–सी बात को,
अमल कोई ही कर पाया।

घर–परिवेश स्कूल यही तो,
बच्चों का है कारखाना।
यहीं से ढलकर निर्मित होता,
मानव का चरित्र बाना।

27–5–11

मेरी बेटी

मेरे जीवन के वे सुन्दर दिन,
रहती थी साथ में जब बिटिया।
अपने स्नेह–व्यवहार से वह,
महका दी थी मेरी कुटिया।

बाहर से जैसे घर आता,
वह पास हमारे आती थी।
मेरे हाथ से ले करके झोला,
वह दौड़कर पानी लाती थी।

मैं कहता मुझको प्यास नहीं,
पर एक न मेरी सुनती थी।
पी लेता न जब तक पानी,
वह पास खड़ी ही रहती थी।

खाने को भी कुछ लाकर दो,
वह नहीं अकेले खाती थी।
मुझको माँ को देकर के ही,
वह उसमें हाथ लगाती थी।

एक दिन झुँझला कर माँ बोली,
तू बेटी मेरी या नानी है।
हर बात को काट सुना देती,
तू मुझको एक कहानी है।

पापा देखो माँ क्या कहती,
वह पास चली मेरे आयी।
उसके लोचन में देख अश्रु,
मेरी भी आँखें भर आयीं।

बेटी को हृदय से लगा कहा,
नाहक तू अश्रु बहाती है।
पाकर के गर्व जिसे हो जाये,
बेटी वह ही कहलाती है।

28–5–11

समय

पापा बतलायें मुझको,
मूल्यवान सबसे क्या होता?
जिसका सद्प्रयोग करने से,
यह जन्म सफल हो जाता।

बेटी संसार में सबसे,
अमूल्य समय ही होता।
इस तथ्य को जो है समझता,
बस वही प्रगति कर सकता।

एक पल का समय भी बेटी,
कभी व्यर्थ न जाने पाये।
जितना हो पाये सम्भव,
उतना हम ज्ञान बढ़ायें।

यह युग है प्रतियोगिता का,
यह बात ध्यान सदा रखना।
यदि लक्ष्य हमें पाना है,
संघर्ष पड़ेगा करना।

ऐसी एक राह पकड़ लें,
जिस पर सदा चलते जायें।
न रुकें न ही सुस्ताएँ,
धीरे–धीरे बढ़ते जायें।

जो गया आज दिन वापस,
वह लौट कभी नहीं सकता।
हम ऐसा आज बितायें,
कल भी आयें मुस्कराता।

जो समय का मूल्य समझते,
वे व्यर्थ न इसे गवाँते।
साकर सपन करने का,
आधार बनाते जाते।

हर स्थिति से मुस्कराकर,
सामंजस्य बनाते जायें।
कुछ भी है नहीं असम्भव,
जिसे चाहें हम न पायें।

पर चाह सदा सच्ची हो,
शुभ हो संकल्प हमारा।
लक्ष्य मिल करके ही रहेगा,
दृढ़ निश्चय कभी न हारा।

पूनों का चन्द्र

पूनों का चाँद मम्मी,
मन को है कितना भाता।
भू पर बिखेर चाँदनी,
कितना प्रसन्न दिखाता।

दिन भर की धूप सहकर,
धरती बहुत अकुलायी।
अब स्वच्छ चाँदनी से,
लगता है ज्यों नहायी।

होकर के तृप्त भूतल,
लगता है जैसे सोयी।
है शान्त ऐसे मानो,
किसी याद में है खोयी।

वायु भी मंद बहकर,
भूतल को है सहलाती।
छू करके चाँदनी को,
खुद भी तो है इठलाती।

पृथ्वी अरु यह गगन तल,
कितना निर्मल दिखाता।
इस धवल चाँदनी में,
मेरा भी मन नहाता।

तन हो रहा है पुलकित,
यह दृश्य देख सारा।
पूनों का चाँद मम्मी,
लगता है इतना प्यारा।

मन में उमंग उठती,
देख चन्द्रमा को माता।
मैं चन्द्र–सी बनूँगी।
मन में भी मेरे आता।

होकर करके गद्गद माता,
बेटी को उर लगायी।
तू चन्द्र से भी सुरम्य
मन को मेरे है भायी।

30–5–11

भाषण

शून्य पर छिटके तारे असंख्य,
गगन की शोभा को बढ़ाते हैं।
तारे यदि आ जायें समीप,
तो वे सूरज कहलाते हैं।

जो जितना होता है समीप,
वह उतना अधिक दिखाता है।
वास्तविकता वास्तव में क्या है?
फिर भी न समझ में आता है।

लेकिन इतना तो निश्चित है,
जो चीज पास में आती है।
औरों की अपेक्षा उसकी छवि,
हम को ज्यादा ही दिखाती है।

धीरे–धीरे से जब यह छवि,
छू लेती मन की गहरायी।
मन उसमें खोजने लगता है,
कर सकता यह मेरा भरपायी।

एक का एक से जुड़ने के लिए,
प्रयास शुरू तब हो जाता।
दो जुड़ जाते पर एक का अब,
आभास न उनमें रह पाता।

इस कारण उत्पन्न होती है,
जीवन में अनेकों समस्याएँ।
इससे जो भी बचना चाहे,
स्व–बोध न ही मन में लाये।

एक–एक तृण का संग्रह करके,
निर्माण नीड़ का होता है।
जहाँ मिलती है स्नेह–छाया,
मानव का वह गृह होता है।

जो अपने सुख के लिए नहीं,
प्रिय के सुख के लिए जीता है।
जिन दम्पति के ऐसे विचार,
जीवन उनका ही महकता है।

एक–एक मिल कर बनते हैं दो,
दो से अनेक हो जाते हैं।
होकर अनेक भी रहे एक,
हम प्रगति तभी कर पाते हैं।

इस भाषण पर बोलो बेटी,
तुम कितना नम्बर हो देती।
पापा मैं आपको पास किया,
कहकर इतना वह चल देती।

31–5–11

कथा

यदि मेरे घर में आँगन होता,
मैं आँगन में खेला करती।
माँ जब तुम तुलसी को पूजती,
मैं आकर प्रसाद खा लेती।

यदि मम्मी तुम गुस्सा होती,
मैं पापा को बुलाकर लाती।
यदि पापा भी पक्ष न लेते,
तब मैं भागकर बाहर जाती।

तब दादी की गोद में जाकर,
उनको सारी बात बताती।
मम्मी मुझे मारने दौड़ी,
इतना झूठ और बोल जाती।

पापा भी कुछ बोल न पाते,
जब आँगन में दादी आती।
क्यों बिटिया के पड़ी हो पीछे,
दादी तुम्हें खूब समझाती।

जब दादी माँ बाहर जाती,
तब मम्मी तुम पास में आती।
प्यारी बिटिया कहकर मुझको,
तब तुम अपने गोद उठाती।

मुस्कराकर माता तब बोली,
व्यर्थ में इतनी कथा सुनाती।
बस मेरे आँचल में आकर,
बेटी तुम केवल छिप जाती।

मेरा क्रोध हवा में जाता,
चूमकर तुझको मैं छपटाती।
टी–शर्ट आप पहनती मम्मी,
आँचल कैसे खोज मैं पाती।

2–6–11

जान–बूझकर

तोता भइया टें–टें जब तुम,
पिजड़े में हो करते।
इतने सुन्दर हो करके तुम,
तब अच्छे नहीं लगते।

रोज–रोज तुमको सिखलाती,
कभी तो बोलो राम।
टें–टें कहकर पा न सकोगे,
तुम जीवन में विराम।

मान रही हूँ पिजड़े में तुम्हें,
होता कष्ट है भारी।
और मुक्ति का कोई रास्ता,
खोज न पाती बुद्धि तुम्हारी।

इस कारण से खिन्न हुए क्या,
सुनते हो नहीं बात हमारी।
हाँ या न में शीश हिला दो,
जानना चाहती चाह तुम्हारी।

इतना कह बेटी चुप हो गयी,
तोता चक्कर रहा लगाता।
फड़फड़ा कर अपने पंखों को,
जैसे वह विरोध दर्शाता।

हो निराश बेटी तब बोली,
तोता भइया नहीं समझोगे।
शुद्धि–बुद्धि का कर प्रयोग तुम,
निज स्वभाव को नहीं बदलोगे।

मैं बोला बेटी स्वभाव कोई,
अपना कभी छोड़ नहीं पाता।
राम–राम कहने से कोई,
तोता बन मयूर नहीं जाता।

जान–बूझकर के भी तम में,
अगर चाहता कोई रहना।
उसे ज्ञान की ज्योति दिखाने,
का प्रयास नहीं बेटी करना।

14–7–11

बीते दिन

आते याद मुझे वे दिन हैं,
जब तुम थी छोटी गुड़िया।
उर से लगा दे–देकर थपकी,
कहता सो जाओ बिटिया।

बिना अर्थ उन गीतों को,
जाता मैं गुनगुनाता था।
सुनकर आज हँसोगी बेटी,
उस वक्त जो मैं गाता था।

बाहर से जैसे घर आता,
तुमको गोद उठाता था।
तुम्हें बोलना भी नहीं आता,
मैं अपनी ध्वनि गाता था।

मेरी बातें सुन करके तुम,
बस केवल मुस्काती थी।
चूम कपोल को जब लेता तो,
तुम रोने लग जाती थी।

नहीं चूमना सुता को आता,
तेरी माँ चिढ़कर कहती।
तुम ही मुझे सिखा दो मैडम,
बात जो न मुझसे बनती।

क्या–क्या मैं सिखलाऊँ तुमको,
खीज वह थी मुझ पर जाती।
मुझ बुद्धू से करके शादी,
लगता है तुम पछताती।

कहना कभी नहीं फिर ऐसा,
बेटी गोद उठाती थी।
देखो चूमते ऐसे शिशु को,
चूम सुता मुस्काती थी।

बीत गये दिन जो जीवन के,
कभी लौट नहीं आ सकते।
पर उन स्मृतियों के सहारे,
जीवन मधुर बना सकते।

15–7–11

यादों में

आज बहुत तुम याद आ रही,
बेटी सपनों में आ जाओ।
पापा–पापा कहकर मेरी,
गोदी में आकर मुस्काओ।

तेरे बचपन की यादों में,
आज चाहता हूँ खो जाऊँ।
नीम के तरु में डालकर झूला,
बेटी तुमको खूब झुलाऊँ।

शब्द सुनायी जैसे पड़ रहे,
पापा मुझको तेज झुलाओ।
मैं कहता तुम गिर जाओगी,
तुम कहती मुझे मत डरवाओ।

बेग बढ़ाया जब झूला का,
फिसल गिरी नीचे चिल्लायी।
हुई जो पीड़ा उस दिन मुझको
आज तलक वह भूल न पायी

उस दिन तुम्हें गोद में लेकर,
बहुत देर तक था पछताया।
तन मन दोनों शिथिल हो गये,
नेत्रों में आँसू भर आया।

मुझे उदास देखकर बोली,
पापा मुझे चोट नहीं आयी।
मैंने तुम्हें बहुत समझाया,
पर झूलने से बाज न आयी।

जब भी द्वन्द्व घेरता मुझको,
याद मेरी बेटी वह आती।
जब सो जाता तब सपनों में,
गोद में आ मेरी इठलाती।

23–7–11

किनारा

नन्हीं–सी बिटिया को,
जब गोद में उठाया।
चाहा उसे खेलाऊँ,
पर चुप करा न पाया।

देकर के माँ की गोदी,
अनुमान तब लगाया।
माँ से विशाल जग में,
कुछ भी नहीं दिखाया।

जीवन जहाँ से विकसित,
आकार एक पाता।
कारण हो चाहे कुछ भी,
सच्चा यही है नाता।

माँ का स्पर्श पाकर,
शिशु रोता चुप हो जाता।
माँ के उछंग आकर,
भ्रम से निकल वह जाता।

माँ के ही बाद बनते,
संसार के सब नाते।
वात्सल्य सिन्धु वह है,
सब जल उसी से पाते।

माता के गोद बेटी,
जी भरकर के निहारा।
फिर देखने लगा कर,
जिसमें उसे सँभारा।

होने लगा उर मंथन,
बहने लगी जो धारा।
मुश्किल था तैर करके,
पा जाऊँगा किनारा।

24–7–11

घर

कितना सुन्दर नृत्य तुम्हारा,
पर तुम किसको मोर दिखाते।
भीग गये बारिश से हो तुम,
क्यों अपने घर को नहीं जाते?

नहीं देखते हो पूरब को,
घिर आयी फिर काली घटायें।
बात हमारी नहीं समझते,
वर्षा से तुम्हें कैसे बचायें?

हो गये इतने बड़े मगर तुम,
नटखट बच्चों से दिखलाते।
मैं कहती हूँ थक जाओगी,
पास हमारे भी नहीं आते।

भीग चाहे वर्षा से जाती,
पर छाता में तुम्हें छिपाती।
यदि घर साथ हमारे चलते,
तुम्हें मिठाई आम खिलाती।

मंद–मंद बह चली हवा तभी,
बिजली भी आकाश में चमकी।
बड़े जोर से बादल गरजा,
बेटी मेरे हृदय आ चिपकी।

मोर भी नृत्य बंद किया अपना,
लगा बरसने जोर से पानी।
पापा कैसे घर जाऊँगी,
कहकर बेटी लगी डरानी।

उठा गोद ले तरु तले आया,
मोर का ध्यान उसे तब आया।
पापा छिपेगा कहाँ बेचारा,
कहाँ पर घर उसने है बनाया।

25–7–11

आयाम

आज एक देखा बाला को,
पुस्तक लेकर थी वह पढ़ती।
मुख पर तल्लीनता थी छायी,
असाधारण प्रतिभा की लगती।

सुन्दर नहीं मगर सुन्दरता,
जिसको पाकर गर्वित होती।
होती है वह सहज सरलता,
गम्भीरता जो कहीं–कहीं दिखती।

नन्ही बच्ची खेल खिलौना,
थकी नींद में ज्यों हो खोयी।
ओप के उसकी ऐसी आभा,
देख स्मृति बेटी की आयी।

मानस में बनती–बिगड़ती,
रहती हैं प्रतिदिन आकृतियाँ।
पुष्प चाहे कितना सुरम्य हो,
बिन सुगन्ध देगा भ्रान्तियाँ।

यद्यपि मैं उसको न जानता,
पर अज्ञेय न वह दिखलायी।
शिखर उच्चतम तक वह जाये,
मन में मेरे कामना आयी।

उसकी भृकुटी बड़ी–बड़ी आँखें,
देख नहीं मैं अन्यथा पाया।
और उसी ने दृष्टि हमारी को,
नूतन आयाम दिखाया।

6–9–11

हवा

जो तुम्हारी छुवन है लगे यह हवा,
न पता यह कहाँ से रही आ हवा।
सारे तन में रही भर लहर एक हवा,
दिल पर ढाती कहर सी लगे ये हवा।

कर के सर–सर की आहट लुभाती हवा,
उर के सितार जाती बजाती हवा।
नीरवता भंगकर मुस्कराती हवा,
सो रहे उनको जाती जगाती हवा।

चूम कर सबको आगे यह बढ़ती हवा,
रोके सरिता गिरों के न रुकती हवा।
एक सम सब झँकोर जाती हवा,
कोई सीमा के रोके न रुकती हवा।

गुनगुनाती मचलती बिहँसती हवा,
कर रही क्या मुझे तू बता ये हवा।
अपने फितरत के करतब दिखा तू हवा,
जो बसे तू उजाड़े न उनको हवा।

ऐसा क्या जिसको छूती नहीं तुम हवा,
कोई टूटे न दिल ऐसा कर तू हवा।
भूला कोई मुसाफिर दिखे यदि हवा,
उसको रास्ता बताते तू जाना हवा।

13.6.10

प्रातकाल

हुआ सबेरा माता आयी,
चूमा सुता लगी मुस्काने।
दुलरा कर फिर लगी समझाने,
प्रातःकाल का महत्त्व बताने।

देखो चिड़िया लगी चहकने,
लगे भ्रमर भी भ्रमण करने।
पूरब में छायी अरुणाई।
बहने लगी मंद पुरवाई।

स्वच्छ वायु जब तन सहलाती,
नव उमंग मन में आ जाती।
प्यारी बिटिया अब उठ जाओ,
सोकर मत विभात गवाँओ।

होते प्रातः कमल–दल खिलते,
एक दिन भी नहीं आलस्य करते।
पक्षी नभ में विचरण करते,
वृक्ष झूमते पुष्प महकते।

समय से अपनी सूरज आता,
पल भर की नहीं देर लगाता।
काम समय से जो निपटाते,
वे भविष्य में नहीं पछताते।

प्रातः छोड़ देता जो खटिया,
उसका स्वास्थ्य रहता है बढ़िया।
जो प्रभात से ऊर्जा आती,
दिन भर वह न ताजगी जाती।

स्वाध्ययन चिंतन प्रातःकाल का,
सम्बल बुद्धि के विकास का।
स्वर्णिम वक्त न सुता गवाँओ,
उठो तैयार हो स्कूल जाओ।

10–9–11

अनुभूति

मैं चीख–चीख कर थक जाती,
पर कब वह मेरी सुनती थी।
रटती रहती बेटी बेटी,
वह मग्न खेल में रहती थी।

भूख–प्यास की न चिन्ता करती,
सर्दी–गर्मी न देखती थी।
खेलते–खेलते थक जाती,
पर बंद खेल नहीं करती थी।

मैं हाथ पकड़कर घर लाती,
तब लिपट लता–सी जाती थी।
चुपचाप डाँट सहकर मेरी,
फिर अश्रु बहाने लगती थी।

मैं कहती मत रोओ बिटिया,
तुम रोज खेलने को जाओ।
पर वक्त पर खाना को खा लो,
पढ़ने में ध्यान भी लगाओ।

कल से मम्मी मैं सिर्फ एक,
घन्टे को खेलने जाऊँगी।
पढ़ने से पहले आप के भी,
कुछ काम में हाथ बटाऊँगी।

सुन करके मैं हो गयी विभोर,
खोयी जैसे चेतना आयी।
बेटी को हृदय से लगा लिया,
और चली पास उनके आयी।

माँ बेटी की उन बातों की,
स्मृति जब मुझको आती है।
तब तक सुखद अनुभूति मेरे,
ऊपर हावी हो जाती है।

11–9–11

मिट्टी की महक

मेरे घर में एक गाय थी,
सचमुच जैसे मैया।
मम्मी जब चाहती लगाती,
वह थी इतनी बढ़िया।

छोटी–सी उसकी बछिया के,
साथ मैं खेला करती।
बेटी इसे मत करो मरकही,
मम्मी मुझसे कहती।

माँ के चढ़ाये शिव पर तन्दुल,
चिड़ियाँ आकर चुनतीं।
गौरेया बुलबुल मैना अन्य,
मन को मेरे हरतीं।

अर्थ जानती न पूजा का,
पर जब प्रातः नहाती।
माँ की तरह शिव जी के ऊपर,
जल तन्दुल को चढ़ाती।

मम्मी हँसती मुझे देखकर,
जान न वे यह पाती।
पूजा का था मात्र बहाना,
चिड़ियों को मैं चुनाती।

तरु अरु पुष्प लगाये थे द्वार पर,
नित शाम उनको सींचती।
आज नीम यह बड़ी हो इतनी,
झूमकर जैसे कहती।

सारे जग घूम पढ़ो–
कितनी किताब की बातें।
बचपन सना हो जिस मिट्टी से,
महक न वह कहीं पाते।

12–9–11

सुन्दरता

सुन्दरता निश्चित ही बेटी,
मन को मेरे भाती।
भू हो या आकाश कहीं भी,
उतर हृदय में आती।

अन्तस् की गहरायी से,
लगता इसका है नाता।
इसीलिये सौन्दर्य देखकर,
ध्यान चला उधर जाता।

देखो तितली भ्रमर पुष्प सब,
कितने अच्छे लगते।
तोता, बुलबुल, मोर, गौरैया,
जब कोयल रव सुनते।

मीठी बोली को सुनते ही,
प्रमुदित मन हो जाता।
इन्द्रधनुष को लख किसका मन,
उड़ना नहीं चाहता।

सुन्दरता की शक्ति असीमित,
खींच मन को ले जाती।
भावों में भव्यता को भरती,
नवप्रेरणा जगाती।

फिर भी जीवन तृप्त न होगा,
सुन्दरता को पाकर।
मधुर सुव्यवस्थित बनेगा जीवन,
विचार परिष्कृत ही कर।

तन पर तो बस नहीं किसी का,
पर मन रखों सुन्दर।
बाह्य सुन्दरता बहती रहती,
ठहरती जो है अंदर।

14–9–11

उटज

मेरे गाँव के अब गलियारे,
पक्के हैं पर संकरे हो गये।
पहले वाली नहीं पगडण्डी,
बेशक कुछ घर पके हो गये।

राम भजन काका का मँड़हा,
शाम जहाँ जलता अलाव था।
हरि चर्चा कर पड़ोसियों का,
जहाँ मनोरंजन हुआ करता था।

आज वहाँ पर महल खड़ा है,
कुँआ नीम लापता हो गया।
मेरी सारी बगिया कट गयी,
ओसारा नहीं शीट लग गया।

पढ़ी थी जिस मैं प्राइमरी में,
आज बन गया डिग्री कालेज।
बचपन वाले दृश्य बदल गये,
लोगों का अब बढ़ गया नालेज।

लेकिन अब भी मेरे मन में,
छिपी हुई बचपन की यादें।
लाड़–प्यार पापा मम्मी का,
याद मुझे एक एक हैं बातें।

मेरा उटज था सरपत का,
जीर्ण एक दिन वर्षा आयी।
टपक रहा था जगह जगह से,
रात नींद उस दिन नहीं आयी।

होते धूप तीसरे ही दिन,
अपना छप्पर नया छा गया।
पर गौरैया के घोसले का,
भी विनाश उस रोज हो गया।

छोटे–छोटे दो गेदा ने,
तड़फ तड़फ कर प्राण को छोड़ा।
बड़ी देर तक मैं रोयी थी,
पापा क्यों घर इनका उजड़ा।

मेरे बहते देख कर आँसू,
पापा ने मुझे गोद उठाया।
लेगीं फिर ये बना घोंसला,
रोओ मत मेरी प्यारी बिटिया।

पापा मम्मी से मिलने को,
जब भी कभी गाँव मैं आती।
गौरैया के उन बच्चों के,
लिए आँख मेरी भर जाती।

आज बदल गया गाँव हमारा,
प्रगति देश की साफ दिखाती।
पर दादी माँ अक्सर कहती,
मौत हमारी क्यों नहीं आती।

15–9–11

मेरा विद्यालय

घर के बाद स्कूल जहाँ,
बच्चों का समय कटता है।
बेटी बोलो विद्यालय में,
अच्छा क्या लगता है।

प्राइमरी मेरे विद्यालय में,
समय पर टीचर आते।
ईश्वर की प्रार्थना को करके,
हम कक्षा में जाते।

गुरु जी पाठ पढ़ाने से,
पहले हैं खूब समझाते।
मैडम जी की सुनकर कहानी,
बच्चे हँसने लगते।

मैडम सूत्र सिखा देतीं,
सीधे दिमाग में जाता।
गणित का हर अभ्यास,
सुगमता से फिर हल हो जाता।

इतिहास की सुना करके कहानी,
तब गुरु जी लिखवाते।
होम वर्क यदि किया न पूरा,
सजा तब बच्चे पाते।

मेरे विद्यालय के छात्र,
अव्वल इसलिए हैं आते।
मैडम का व्यवहार प्यार का,
सब बच्चे गुण गाते।

सबसे अच्छी मैडम जी हैं,
पापा मुझको लगती।
फिर गुरु जी फिर बड़े गुरु जी,
फिर वह तरु जहाँ खेलती।

विद्यालय की साफ सफाई,
बहुत ही अच्छी लगती।
इंटरवल में तितली पकड़ने,
को मैं दौड़ा करती।

मेरा विद्यालय पापा जी,
सचमुच है बड़ा प्यारा।
स्यात् ऐसे हों सब विद्यालय,
मिट जाये दु:ख सारा।

16–9–11

चींटी

बेटी चींटी को देखा क्या,
कभी आराम को करते।
छोटी–सी वह जान,
काम करती औकात से बढ़के।

एक पंक्ति में ऐसी चलती,
बन जाती ज्यों रेखा।
इतना अनुशासन सेना में,
मैंने कभी न देखा।

मिल–जुल करके आपस में वे,
सदा ही भोजन करतीं।
ईर्ष्या द्वेष को छोड़ प्रेम से,
सदा साथ सब रहतीं।

कही मिठाई की सुगन्ध यदि,
एक चींटी पा जाती।
एक दूसरे को बतलाकर,
एक साथ सब खाती।

वर्षा का आभास भाँप
घर और खोजने लगती।
एक दूसरे का अंडा मुँह में
लेकर के चलती।

बाधाएँ कितनी हों मार्ग में,
पर वे बढ़ती जातीं।
फल की इच्छा छोड़ कर्म के
पथ को वे अपनातीं।

यही बताती चींटी हम को,
आगे बढ़ते जाओ।
गिरो उठो पर बढ़ो निरन्तर,
लक्ष्य न जब तक पाओ।

17–9–11

मेला

मेरे साथ देख मेला,
बेटी जब घर आयी।
माँ को लगी देखने,
देखो मैं क्या क्या लायी।

भैया के लिए गुब्बारे,
और लायी हूँ यह सीटी।
दादी माँ के लिए लायी,
मम्मी ये सेवें मीठी।

आप के लिये यह माला,
देखो है कितनी सुन्दर।
श्री कृष्ण जी का लायी,
मम्मी मैं यह कलेन्डर।

आप की पसन्द जलेबी,
यह गर्म गर्म लायी।
माँ ने कहा क्या देखा,
और बोल क्या तू खायी।

मौत का कुँआ काला जादू,
देखा फिर मैंने सरकस।
चिड़ियाघर घूम झूली,
खायी फिर चाट जी भर।

गन से लगा निशाना,
फोड़े कई गुब्बारे।
तू मेरी पुत्रिका है,
पापा थे तब पुकारे।

मिष्ठान की दुकान पर,
पापा मुझे बिठाया।
जो खा सकी सो खायी,
यह शेष बाँध लायी।

माँ बोली हाथ धो ले,
चल बैठ खा ले खाना।
यह भी तो देखो मम्मी,
लायी हूँ जो खिलौना।

अच्छा ठहर आती हूँ,
देख शाम हो है आयी।
तेरी बात में उलझ कर,
दीपक न मैं जलायी।

20–9–11

पर्यावरण

सूरज हमें रोशनी देता,
बादल देता पानी।
सरिताएँ सहेज कर जिसको,
सागर में पहुँचातीं।

नदियों से ही नहर निकलते,
शहर गाँव में जाते।
मृदु जल मिलता पीने को,
अरु खूब फसल उपजाते।

जल और भोजन से ही सारे,
जग के प्राणी जीते।
ये दो चीजें हर प्राणी को,
धरती माँ से मिलते।

बढ़ते हुए प्रदूषण से अब,
धरती माँ अकुलाती।
जगल कट कर खेत बन रहे,
बस्ती बढ़ती जाती।

दे साधन विज्ञान नये नये,
जीवन सरल बनाया।
पर यह भी सच है प्रकृति का,
संतुलन भी डगमगाया।

प्रकृति का अपने स्वरूप से,
यदि परिवर्तन होगा।
तो इसका परिणाम एक दिन,
बहुत भयंकर होगा।

बेटी मानव का यह धर्म है,
जाने यह वास्तविकता।
पर्यावरण रहे स्वच्छ हमारा,
जिससे से जीवन चलता।

22–9–11

नन्हीं परी

आयी उतर वितान से,
नन्हीं सुरम्य एक परी।
सूखी हुई आशाओं में,
बारिश की लग गयी फिर झरी।

हरितमा दिखने लगी,
सावन सुहाना आ गया,
सरितायें फिर बहने लगीं,
कल कल का स्वर आने लगा।

ओ मेरी नन्हीं परी,
जी चाहता तेरा नाम रख दूँ।
तेरी स्मृति बंद करने के लिए,
यह काम कर लूँ।

वक्त जब बदलेगा करवट,
तब न तू मेरे पास होगी।
उछंग से मेरे निकल कर,
नयी तेरी पहचान होगी।

कामना मेरी यही तुझसे मेरी,
पहचान होगी।
किसकी बेटी है जगत को,
जानने की चाह होगी।

जब न तू मेरे पास होगी,
याद से खेला करूँगा।
नाम न रख कर तेरा,
हर नाम में देखा करूँगा।

बस सदा बहती रहे,
अन्तःस्थल में यह ही धारा।
डूबने का गम नहीं,
नहीं चाह पा जाऊँ किनारा।

01–10–11

जाना

जब मैं छोटी बच्ची थी,
कक्षा एक में पढ़ती थी।
स्कूल से जैसे घर आती,
माँ मुझको गोदी में उठाती।

मेरे केशों को सहलाती,
हाथ मुँह धुलवा खाना खिलाती।
फ्राक तुम्हारे लिये यह लायी,
फिर देखती क्या पढ़ कर आयी।

होम वर्क मेरा करवाती,
काम भी घर का करती जाती।
कभी कभी पापा झुँझलाते,
तब मम्मी को डाँट लगाते।

सुनकर वे केवल मुस्कातीं,
चाय बना कर के ले आतीं।
सब को खिला कर खाना खातीं,
पास मेरे आकर सो जातीं।

सुबह सबसे पहले उठ जाती,
चौका बर्तन झाडू लगाती।
सदा सतुष्ट प्रसन्न दिखाती,
हर स्थित में थी मुस्काती।

दिन भर बेटी बेटी करती,
मुझे गोद ले खेला करती।
बड़ी हुई तो मैंने जाना,
माँ महान् क्यों जग ने माना।

16–10–11

दीपक

खुद जल कर प्रकाश फैलाता,
इसलिये दीप पुकारा जाता।
एक बूँद भी जब तक रहती,
बेटी दीपक की लौ जलती।

जो भी पास में उसके आता,
सहज उसे आलोक मिल जाता।
भेदभाव दीपक नहीं करता,
आता पास उसका तम हरता।

अपना दर्द प्रकट नहीं करता,
आलोकित सब का पथ करता।
वायु वेग से तनिक न डरता,
झुक जाता पर जलता रहता।

जब तक दम वह लड़ता जाता,
बुझने से न कभी घबड़ाता।
निज स्वभाव से कभी न हटता,
अंधकार से लड़ता रहता।

बदले रूप दीप ने कितने,
मगर लक्ष्य न बदले सपने।
दीपक कर्म का पथ अपनाता,
तम उसे देख दूर भग जाता।

चौखट पर सब दीप जलाते,
पता नहीं क्या पाना चाहते।
यदि मन में हम दीप जलायें,
कभी अमंगल पास न आये।

17–10–11

ज्ञान

मेहँदी नहीं दिखायी पड़ती,
छिपी हुई पत्तों में रहती।
उसे पीस जो तन पर लगाते,
मेहँदी के रंग से रँग जाते।

ज्ञान में भी है शक्ति असीमित,
पर जब तक बुद्धि नहीं परचित।
ज्ञान अभीष्ट न जब तक देता,
तब तक न प्रयोग कोई करता।

प्रथम प्रयास ज्ञान को पाये,,
जीवन में उसे सदा अपनाये।
विचलित उसे न कोई कर सकता,
ज्ञान का दीपक जिस उर जलता।

अर्थ वही जीवन का पाता,
जीवन मधुर सुरम्य हो जाता।
उसको अपना पथ दिखलाता,
अनवरत उस पर बढ़ता जाता।

आँधी वर्षा आती रहती,
पथ से उसे न विचलित करती।
बेटी ज्ञान से न कुछ बढ़कर,
ज्ञान प्राप्त करे आलस्य तजकर।

भौतिक जगत चमत्कृत होगा,
मृत्यु का भय नहीं किंचित होगा।
कर्तव्य का सदा बोध रहेगा,
जीवन का आलोक दिखेगा।

चित् हमेशा रहेगा हर्षित,
आ जाये चाहे कोई परिस्थिति।
ज्ञान से श्रेष्ठ न कोई खजाना,
हर प्राणी को चाहिए पाना।

विश्व तभी यह सुखमय होगा,
हर मानव जब शिक्षित होगा।
वास्तविकता का बोध कराती,
शिक्षा जीवन पूर्ण बनाती।

20–10–11

कारण

बेटी ने प्रश्न किया मुझसे,
पापा जो बड़े सिखलाते हैं।
कारण क्या है उसके ऊपर,
वे स्वयं नहीं चल पाते हैं।

कुछ देर खड़ा सोचता रहा,
मुझे अपनी कमी नजर आयी।
बेटी से पर किस तरह कहूँ,
बुद्धि ही मेरी चकरायी।

मुझको इस तरह अधीर देख,
बेटी मेरे पास चली आयी।
क्या प्रश्न गलत मेरा पापा,
कह उसकी आँखें भर आयीं।

हो गया हृदय कंपायमान,
बेटी यह तू क्या कहती है।
मैं अपनी कमी जानता हूँ,
कहने की मुझमें शक्ति है।

कथनी करनी जब तक मिलकर,
हो जाते एकाकार नहीं।
तब तक जो हम कहते रहते,
चलने का वह आधार नहीं।

पुस्तक में जो पढ़ते बेटी,
वह न प्रत्यक्ष दिखलाता है।
पढ़ने से अधिक आँखों देखे,
दृश्यों का प्रभाव ही पड़ता है।

हम जिस समूह में रहते हैं,
उसके रंग में रँग जाते हैं।
अंदर से कुछ बाहर से कुछ,
जीवन इस तरह बिताते हैं।

हम स्वयं देख सकते खुद को,
अंदर जो हाल हमारा है।
दुर्भाग्य स्वयं को छुपा किया,
औरों की तरफ इशारा है।

हम अपनी कमी दूर करना,
नहीं उसे छुपाना चाहते हैं।
इसलिये स्पात् जो कह देते,
उस पर न कभी चल पाते हैं।

पर बच्चों के सम्मुख आकर,
वात्सल्य में जब बह जाते हैं।
तब बात उन्हें पुस्तक वाली,
बेटी इसलिये सुनाते हैं।

अत्यन्त प्रिये के द्वारा भी,
जब घाव हृदय पर लगता है।
उस वक्त सही निर्णय लेना,
बुद्धि के बस नहीं होता है।

बस राग द्वेष में सना हुआ,
जीवन उलझा कट जाता है।
तेरे प्रश्न का उत्तर मेरी समझ,
में बेटी इतना आता है।

22–10–11

पहचान

मैं चाहता हूँ तुम से,
कभी मोह यह न जाये।
अंतिम भी साँस में बस,
तेरा ही नाम आये।

तुम खेलती रहो बस,
गोदी में मेरे ऐसे।
मैं देखता रहूँ यूँ,
तुम को सदा मचलते।

उर में हुआ था कम्पन,
जिस पल तुम्हें निहारा।
पड़ी फूट वात्सल्य की,
बहने लगी जो धारा।

रहता बहूँ सदा ही,
नहीं चाहता निकलना।
अब व्यर्थ है जगत में,
कही मोल तोल करना।

बेटी को दुलरा करके,
जो भाव मैंने पाया।
उसके समान जग में,
कुछ अन्य न दिखाया।

पायेगा थाह इसकी,
जो बात हूँ मैं कहता।
बेटी हो चाहे जिसकी,
बेटी ही बस समझता।

यदि सोच मेरा सही है,
पहचान संकुल होगी।
मैं न रहूँगा तब भी,
बेटी मेरी रहेगी।

31–10–11

यदि चाहते हो बच्चों

यदि चाहते हो बच्चों दुनिया में नाम करना।
तो सीख पहले लीजे वाणी पर संयम रखना।।
कुछ भी नहीं है मुश्किल दिल में लगन हो सच्ची।
मेहनत से जो मिल जाये वह चीज होती अच्छी।।
कितनी भी हो बाधायें, रास्ते में न घबड़ाना।
जब तक न मिले मंजिल आगे ही बढ़ते जाना।
छल छद्‌म द्वेष तजकर मन को पवित्र रखना।
विद्या विनय सिखाती झुककर के सीखो चलना।। यदि....
कभी किसी भी प्राणी का दिल नहीं दुखाना।
जो बैर तुम से रखे कल्याण उनका करना।।
अपने हृदय के अंदर यह बात संजो रखना।
जो तुमको लगे अच्छा औरों के साथ करना।।
दुनिया के हर धर्म का है सार बस मानवता।
गाली का काट हँस कर बच्चों तुम सीखो करना।। यदि....
अपना है क्या पराया इस भेद में न पड़ना।
बन पाये तुम से जितना उपकार करते रहना।।
माता पिता गुरु का सम्मान सदा करना।
अपनी स्वदेशी संस्कृति को तुच्छ न समझाना।
बस त्यागमय ही जीवन मानव को शान्ति देता।
इस बात को जीवन में आजमा कर देख लेना।। यदि.....
उसके ही जन्म लेने का अर्थ सफल होता।
खुद पी जहर का प्याला औरों को जीवन देता।।
दुनिया विजय से बढ़कर खुद पर विजय पा जाये।
जो पास आये उससे बस प्रेम करते जाये।।
महका दो सारी धरती यह ध्यान सदा रखना।
बच्चो जगत में तुमको ऐसा ही काम करना।। यदि.....

मेरी सुध बुध खो जाती है

मेरी सुध बुध खो जाती है,
जब तुम सम्मुख आती।
होता विफल प्रयास दृष्टि,
अखिर तुम पर टिक जाती।

सुंदरता साकार हुई ज्यों,
बनकर कोई मूरत।
मन भावन पावन लगती है,
ऐसी है तेरी सूरत

भरे हुए यौवन के मद से,
छलक रही ज्यों प्याली।
मणि–मणिक्य से भरी हुई
मानो कोई स्वर्ण की थाली।

होता उर आमोद देख कर,
तेरी छटा निराली।
मनोभाव में आ जाती है,
हो इतनी मतवाली।

सुंदरता के मानदण्ड ज्यों,
एक साथ मिल सारे।
तेरी सूरत में आ बैठे,
दिखते कितने न्यारे।

मचल रहे शिशु को ज्यों माता,
कर के यत्न मनाती।
लोरी थपकी अरु दुलार से,
ध्यान अलग ले जाती ।

कोमल तन से निकली रश्मि,
जब मुझ तक है आती।
बनकर लहरें शान्त हृदय में
उथल पुथल कर जातीं।

मेरे हिय कुछ भी न मिलेगा,
बह, सौन्दर्य की सरिता।
हृदय गम्य यदि कर ले इसको,
मिल जायेगी शुचिता।

12.8.10

चाह मेरी रोके से न रुकी

चाह मेरी रोके से न रुकी
तुम मोहक इतनी मुझे लगी ।
चला नहीं नेत्रों पर मेरा जोर,
देखना तुम्हें चाहती और।

तुम्हारी सूरत लगी भली,
मासूमियत चेहरे पर फैली।
गौर सुन्दर अतिसय सुकमार,
रहा न कोई बनाव श्रृंगार।

तुम्हारा देख सलोना रूप,
भूल मैं गया खड़ा हूँ धूप।
हुआ शीतलता का अहसास,
उमड़ आया उर में उल्लास।

सिमट कर जिमि सारा सौन्दर्य,
दिखता तुम में निज माधुर्य।
सुखद मुझे लगा तुम्हारा रूप,
लगा मैं हो गया स्वयं अरूप।

बिहँस उठी अभी ज्यों कोई कली,
लगी तुम इतनी मुझे भली।
तुम्हारी सुछवि अतुल अनुपमेय,
उलझा देने वाली प्रमेय।

आनोखी सुंदरता परिष्कृति,
कर गयी मेरा हिय झंकृत।
सौन्दर्य का लख अद्‌भुत बाग,
उमड़ने लगा ह्रदय अनुराग।

रूप की मानो तुम सागर
डूबने को हुआ मन आतुर।
भावना में उठ गया उद्वेग,
तुम्हारी छटा निराली देख।

कल्पना उठी पुरानी जाग,
स्वरों ने छेड़ दिया फिर राग।
वही ध्वनि और वही संगीत,
वही मन भावन सावन गीत।

23.8.10

मगर करें सोच समझकर प्रीत

तुम्हारी सुंदरता को निहार,
हिलोरें लेने लगे विचार।
अद्वितीय बना तुम्हारा गात,
वह भावें मनहि नहीं कहि जात।

स्वर्ग से जैसे हो उतरी,
रही लग मानो कोई परी।
कहीं भूतल पर तुम सा और,
नहीं दिख सकता किसी भी ठौर।

बिलोचन छवि को कर रहे पान,
भूल गया मान और अपमान।
कहाँ हूँ रहा नहीं यह भान,
हो गया ज्यों पत्थर के समान।

तुम्हें शब्दों में करके बंद
चाह है बना लूँ कोई छंद।
हो जाओ जब आँखों से दूर,
छंद में रहे तेरी तासीर।

तुम्हारे ओष्ठ नाक अरु गाल,
घुँघराले बिखरे काले बाल।
दमकती माथे पर बिदियाँ,
धनुष सी भौंहें बड़ी अखियाँ।

तेरे हर अंग अंग न्यारे,
एकठा नभ के ज्यों तारे।
दृष्टि ने देखा जो भी अंग
अनूठापन लखि रह गया दंग।

दृष्टि ने जहाँ मान ली हार,
कल्पना का ले वहाँ आधार।
देख लिया अपने ढंग अनुसार,
मगर जा सका नहीं उस पार।

घनों में ज्यों विद्युत की चमक,
देह के प्यार की भी यूँ दमक।
सुंदरता अच्छा–सा है गीत,
मगर करें सोच समझकर प्रीत।

13.9.10

बादल

आया आषाढ़ आये बादल, लगे उमड़ घुमड़ करने बादल।
आपस में टकराते बादल, गर्जन कर इठलाते बादल।
बिजली की चमक करते बादल, ठहरे फिर भाग चले बादल।
रिमझिम रिमझिम बरसे बादल, भू प्यास मिटाते हैं बादल।

हैं जनक हरियाली के बादल, नभ के श्रृंगार है ये बादल।
ये रंग बिरंगे हैं बादल, मन भावन पावन है बादल।
भू शिखर आलिंगन कर बादल, पत्थर को प्यार करते बादल।
बूँदों की झमझम से बादल, भू तन सहलाते हैं बादल।

जी चाह रहा मेरा बादल, छू लूँ तुमको उड़ कर बादल।
तुम कितने हो प्यारे बादल, सारे जग में न्यारे बादल।
धरती के सुहाग हैं बादल, सृष्टि के श्रृंगार हैं ये बादल।
नव जीवन के उद्गम बादल, वरदान हैं जीवन के बादल।

मन मचल रहा मेरा बादल, कर दो मुझे तर–बतर बादल।
धुल जाये मैल मेरी बादल, मानव की तरह जी लूँ बादल।

15.6.10

मोहब्बत

उमड़ती हसरतें दिल की समय न रोक पायेगा,
मुहब्बत जैसे पहले थी वह आखिर तक दिखायेगी।

जरूरी है मुहब्बत में कभी भी मैल न आये,
अगर लग भी कहीं जाये मुहब्बत से धुली जाये।

मोहब्बत ही दिखा सकती सही तस्वीर जीवन की,
इस धरित्री पर इबादत है तो बस केवल मुहब्बत है।

मोहब्बत पर बिखर जैसे गया है आज यह वजूद,
तुझे अहसास होगा ही पड़ा मैं किस अंधेरे में।

फिसल कर ही सही लेकिन गिरा महबूब चरणों पर,
अगर यह है पतन तो भी तुझे अफसोस न होगा।

मेरा दिल जब होता घायल तड़पता है भटकता है,
मोहब्बत में समा जाने को मेरा जी मचलता है।

25.6.10

जगत का सच मोहब्बत है

तुम्हारी याद में आँसू बहाऊँ तो क्या अच्छा है
अरे जो प्यार में रोये समझियेगा वह बच्चा है
मोहब्बत करने वाले तो मौत से भी न घबरायें
मोहब्बत ही इबादत है समझ ले जो समझ पाये

आशिकी के नशे में जो तुम्हें दीवाना दिखता है।
मुझे अक्सर न जाने क्यों कोई सायाना लगता है।
किया जिसने मोहब्बत है वही यह जान पायेगा,
और जो जान यह जाये वही मानव कहायेगा।

मुझे तुम से मोहब्बत है न जाने कितने कहते हैं
तुम्हारी याद में जीते तुम्हारे लिये मरते हैं
मगर एक रोज मिलने में लगा महबूब दी देरी
बस इतनी बात पर चिढ़कर नाक भौंह उसने सिकोरी

मोहब्बत में जरूरी है कि शिकवा अरु शिकायत हो,
मगर उसमें जरूरी है न उसमें कुछ मिलावट हो,
मोहब्बत आप को निश्चित मंजिल तक पहुँचायेगी,
जगत की कोई भी ताकत रोक न उसको पायेगी।

मोहब्बत ही इस धरती पर सबसे खूबसूरत है
आदमी के जिंदगी की सबसे बड़ी जरूरत है
मोहब्बत का मोहब्बत से ही देना चाहिए उत्तर
जगत का सच मोहब्बत है मोहब्बत से न कुछ बढ़कर।

❑❑❑

किसी को प्यार कर बैठे

किसी को प्यार कर बैठे,
तो उसको फिर न अजमाना।
अगर ऐसा किया तुमने
तो फिर क्या प्यार को जाना।

प्यार दुनिया में मुश्किल से,
किसी किसी को मिलता है।
जिसे यह प्यार मिल जाये,
वह मंजिल पर पहुँचता है।

30.1.10

याद

मैं तुमसे दूर रहकर भी,
न रोता हूँ न हँसता हूँ।
तुम्हारी याद को दिल में,
संजोये सदा रहता हूँ।

मेरे दिल पर जो बीता है,
न कह सकता जुबानी हूँ।
जो आते स्वप्न स्वप्नों में
भी आँखों में ही पानी है।

❑❑❑

पतली स्मित

शुभ्र ज्योत्स्ना सी ज्यों, आयी बिखर हृदय क्षितिज पर।
घोर छायी निस्तब्धता को, भंग करती समीर जैसी।
द्वितीया का चाँद सी, मुझको लगी मानो गगन पर।
एक पतली सी स्मित, जब आ गयी उसके अधर पर।

आषाढ़ की छायी घटायें, देखता है कृषक जैसे।
फूट जाती फिर कोपलें, सूखती हुई आश में ज्यों।
फूल में मकरंद पाकर, ठहर जाता वहीं मधुकर।
ठहर उस पल मैं गया भी, अधखिली मुस्कान लख कर।

भटकता है लक्ष्य को, ज्यों खोजता कोई मुसाफिर।
थक कर जब वह बैठ जाता, तरु के नीचे श्रम मिटाने।
जिन्दगी के शोर में, ज्यों मिल गया एकांत आकर।
यों हुआ अहसास मुझको, देख कर मुस्कान तेरी।

उस स्मित के ओज में, लगा भाव ऐसे प्रांतर गढ़ने
यू लगा मुझको कि जैसे, दृश्य वे देखे न पहले।
दग्ध होती जिंदगी का, एक पल का छाँव–सा ही।
बाले मुझको लगा यूँ, देखकर मुस्कान तेरी।

व्यक्ति के व्यक्तित्व की, मुस्कान में दिखती झलक है।
हृदय के प्रतिबिम्ब को, मुस्कान कर देती प्रकट है।
बिन कहे कह देती वह, जो हो नहीं सकता मुखर है।
एक पतली सी स्मित, जीवन की बन जाती किरण है।

20.6.10

इच्छा

मैं क्यों भावुक हो जाता, जब याद तुम्हारी आती है।
तुम्हें देखने को मेरी, आँखें अक्सर ललचाती हैं।

वह मूरत जिसकी कर सूरत, हृदय उमड़ने लगता है।
उमड़ घुमड़ वेदना तड़प कर, नयनों से बह जाती है।

कभी रात को नींद खुली, मैं तुम्हें पुकारने लगता हूँ।
तुम तो पास नहीं हो मेरे, भूल मैं अक्सर जाता हूँ।

हाँ मेरे सपनों की दुनिया में, तुम अक्सर आती हो।
सपनों में भी स्वप्न दिखाकर, स्वप्नों में खो जाती हो।

तुम समझो अथवा न समझो, मैंने तुमसे प्यार किया।
यह मैं अच्छी तरह जानता, गलत यह मैंने काम किया।

अब निश्चिन्त हो चुका जिंदगी, ऐसे ही कट जायेगी।
तुम्हें देखने की अभिलाषा, क्या पूरी हो पायेगी।

यह तो तुम्हीं जानती होगी, मैं न बतला पाऊँगा।
हाँ तुम्हें देखने की इच्छा, ले करके ही जाऊँगा॥

श्रमिक बालिका – 1

उद्वेलित कर गयी हृदय को ऐसी थी वह,
एक नहीं कई प्रश्न छोड़ गयी ऐसी थी वह।
खोज नहीं सकता मैं इन प्रश्नों का उत्तर
उठे हृदय के इस क्रंदन को नहीं प्रकट कर सकता बाहर–

बस इतना ही कह सकता हूँ,
लगी मुझे सचमुच वह अच्छी।
श्यामल मुखड़े पर मासूमियत,
लगी बहुत प्यारी–सी बच्ची।
श्रम से थकी खड़ी प्रतिक्षा में,
घर जाने की कर रही जल्दी।
भरी भीड़ में उसे देख कर,
लगा कोई मृग शावका बंदी।
मृदल गात भोली–भाली–सी,
लगी मुझे सुन्दर ज्यों गुड़िया।
चक्षु मचल उठे छबि बटोर वह,
बना के अंजन रखे डिबिया।
लगी मनोहर अतिसय पावन,
सरल स्निग्ध परिपूर्ण सुंदरता।
हृदय चाह उठा उसे संजो लें,
निकट न आ सके ताकि कलुषता।
अक्सर मुझे यही लगता है,
सुंदरता मानो एक दीपक।
जिस प्रकाश में स्वयं को पढ़ने
लगता हूँ जैसे कोई बालक।
ऐसे स्वप्न देखने लगता,
जो हो सकते कभी न पूरे।
भाव बहा ले जाता मुझको
चाहूँ रुकूँ नहीं बस मेरे।

छोटी वय में उदर पूर्ति हित,
उलझी, देख उसे उद्यम में।
पता नहीं क्यों एक साथ ही,
कई प्रश्न उठ गये हृदय में।
यह समाज रिश्ते नाते क्या,
दिखी देश की उसमें सूरत।
कौन इसका उत्तरदायी है,
नहीं हो सका मुझसे निश्चित।
बाल श्रम एक घोर विडम्बना,
दाग एक है मानवता पर।
विद्यालय का जब तक जीवन,
बिका करेगा चौराहे पर।
तब तक व्यर्थ यह लोकतंत्र है,
झूठ समानता का है नारा।
जब तक शोषण उत्पीड़न है,
तब तक स्वतंत्र न देश हमारा।
बाल श्रमिक के बल से भारत,
कभी नहीं जा सकता आगे।
बाल श्रम यह बता रहा है,
नीति निर्धारितों का लक्ष्य आगे।
जिसका बचपन घुटन में बीते,
क्या उसका यौवन आयेगा
बनकर गिद्धों का ही भोजन
उनको तृप्त कर मर जायेगा।

18.9.10

श्रमिक बालिका–2

श्रमिकों के बीच में घिरी बच्ची
मुझे लगी बहुत प्यारी सच्ची
धेनु की बछिया कूदती उछलती दौड़ती
कितनी तेजी से माँ के पास आती

परन्तु दूध नहीं पाती
मुँह मार मार कर थक जाती
निढाल होती कुछ समझ पाती
इस से पहले बिक जाती
कसाई के हाथ.......।

कसाई मांस है जिसका व्यापार
लाभ है जिसका आधार
उन्हें उम्र से क्या सरोकार
कोई भी कटे,
वे रहेंगे सत्य पर डटे

प्रश्न है जो बेचते हैं
क्या वे आयु देखते हैं
शायद नहीं
क्योंकि जरूरत है सबको प्यारी
पर आवश्यकता के लिए
जो संतान का सौदा करते हैं
वे केवल मनुष्य जैसे दिखते हैं
पर वास्तव में
वे मनुष्य नहीं होते हैं.......।

होगी जरूर कोई गहरी बात
लगी होगी उसे घात
जो नहीं है मुझे ज्ञात
पर इतना तो तय है
उसकी विवशता है
अन्यथा इस युग में
मात्र सौ रुपये में
कौन सुरक्षित समझेगा
अपना भविष्य

पेट की आग बुझाने में
जिनका झुलस जाता बचपन
कभी वे मिले तो पूछियेगा
क्या सोचता है उनका मन
कारण कुछ भी हो,
परन्तु बाल श्रम
वह भी एक किशोरी
चाहे किसी की भी हो मजबूरी
किसी भी स्थिति में
न्याय का तकाजा
करता रहेगा प्रश्न
हम से, समाज से,
परिवार से
विश्व के कर्णधारों से,
और इस देश से....।

19.9.10

रूप मन और मैं

रुप के शैवाल में उलझा हुआ मन,
देखता ही रह गया मैं विवश होकर।
खोजता क्या चाह तो अपनी बता दें,
प्रश्न यह मैं पूछ बैठा उससे एक दिन।

बोल तब वह यह उठा यदि जानता मैं,
खोज क्या अपनी अगर पहचानता मैं।
तो उसे कर प्राप्त मैं संतुष्ट होकर,
चैन की बंशी बजाता नजर आता।

मैं नहीं मानूँगा मन जो कह रहे हो,
रूप के आगोश में लिपटे हुए हो,
घिर रही काली घटाये से घिरे इस चाँद में तुम
वायु जल की खोज का प्रयास जैसा कर रहे हों।

हाँ कुछ इससे भी बढ़कर रूप में मुझे दिख रहा है,
वायु जल जिसे कह रहे हो प्राण जैसे वह मेरा है।
रूप के प्रवाह में बहता रहा बहता रहूँगा,
खोज जिस दिन पूर्ण होगी स्यात् उस दिन न रहूँगा।

23.6.10

मन की सुनकर बात मैं, निष्कर्ष पर पहुँचा नहीं।
रूप के पीछे रहा वह, भागता वैसे अभी
किन्तु उसको रोकना, अब मेरे भी बस में नहीं।
इसलिये अब मौन रहना, मुझको भी अच्छा लगा।

दृष्टि से पर रूप को, कोई भी पढ़ पाया नहीं।
भावना के वेग को, स्थिर न कर पाया कभी।
एक भटकन के सिवा, संतोष दे पाया नहीं
प्यास बढ़ती रही, पाया पकड़ कोई नहीं।

हाँ इतना है मगर फिर भी, यह मन माना नहीं।
रूप की सरिता में बहते, देखता उसको रहा।
यह भी सच है रूप ने, मन को मेरे घायल किया।
किन्तु अपने दर्द को, वह मुझसे छुपाता रहा।

रूप से लिपटा हुआ मन, सैर कर आता जहाँ।
कल्पना में मैं वहाँ तक, सोच भी पाता न था।
किन्तु इस सौन्दर्य पर, यूँ मुग्ध मन को देखकर।
वस्तुतः यह सत्य है–मैं द्वन्द में जकड़ा हुआ।

रूप आया जब नजर, तब मन प्रफुल्लित उठ चला।
हृदय के रख कर तराजू पर, पर, उसे तौला कहाँ –
कोमलांगी के बदन की, तह तक जा पाया नहीं।
सतह पर भी तैरना, उसे ठीक से आया नहीं।

यह तो मेरी सोच है, मन से कभी कहता नहीं।
लक्ष्य तू मन प्राप्त कर ले, चाहता मैं भी यही।
जब कभी थक करके मन, आयेगा मेरे पास तू।
तब बता दूँगा तुझे, इस रूप की है चाह क्या।

रूप की चल कर सतह से, हृदय तल में उतरना ।
वृक्ष के जड़ के सदृश्य, कस कर हृदय को जकड़ना।
कोशिशें तब वायु की, नाकाम कर दोगी सभी।
चाह करके रूप भी, न भाग पायेगा कभी।

24.6.2010

तुम

तुम मेरी कल्पना हो,
हृदय थक कर
निढाल–सा
सुसतानें लगता
तब तुम उतर आती
साँझ–सी,
फैल जाती क्षितिज पर
अरुणिमा युक्त
शान्ति.........।

ठहर जाता हूँ वही
बोझिल पलकें
चाहता हूँ खोल दूँ
निहार लू तुम्हें जी भर
पर नेत्र खुले नहीं
ऐसा लगा
आहिस्ता आहिस्ता केशों में
उलझ रहे हैं कर
कोशिश करता तो सुनायी पड़ती
कहीं दूर
आहट –

उठता हूँ तन स्फूर्ति
साथ में जागते हैं सोच
सारे जीवन को,
सोखा है इसी सोच ने

बचा क्या
एक झूठ
जिसे सच मानना
उसी में समा जाना
यही तो नहीं कर पाया
हृदय...........

हाँ यह मेरी कमी है
जिसकी पूर्ति हो तुम
महत्वपूर्ण है शान्ति
वह जहाँ भी मिले
कोशिश करें पायें
जीवन व्यतीत न करें
उसे जीयें कुछ इस तरह
सुगंध बिखरे
जो भी पास आये
विभोर हो...........

मैं जानता हूँ
मेरे पास सुगन्ध नहीं
खोज जरूर रहा था
जहाँ भी जाता
एक भ्रम होता
टूट जाता
गिरता उठता चलता
नहीं खोज पाया मैं उसे

अभी तक
पर वह है.........

सच कहता
तुम मेरी कल्पना
हकीकत में कहाँ
हो भी नहीं सकता
हृदय धड़कता
हर धड़कन का स्वर
बदलता कहता
आज और कल
हैं तो एक जैसे
पर एक नहीं हो सकते।

मुझे लगता है
रिश्ते प्यार मूल्य सिद्धान्त
न जाने कितने विचार
ढीले पड़ गये
मनुष्य के स्वार्थ ने बनाये
सारे नियम
इसीलिए धरती पर
अलग–अलग जगह
अलग–अलग तरह
खड़े हैं
नाम बदल कर–

मैंने विचारों की,

टक्कर मारी जहाँ,
लौट आये
कुछ नहीं ला पाये
तब मैंने देखा
उसको
वहीं है वह
जो कहा करती थी
आई लव यू–

परिवर्तित विचारों में
उभरी छवि
जो
बना करती थी हृदय तल में
बिखरी
संजो न सका हृदय
सरक गयी धीरे–धीरे
हो गयी अदृश्य

फिर क्यों
तुम्हारे गात पर तैरती दृष्टि
विच्छेद मुझसे
ग्रीष्म के ताप में
एक फुहार–सी
तुम्हारी देह का
नेह
आज हो रहा कुआर का मेह।

अपना ही है वह
बस इतना मान लेने से
परिणय
मिलता देह
आवश्यकता की पूर्ति
नींव
नहीं रोक सकती
भार
दो प्रेमियों का

प्रेम है क्या आया कहाँ से
बनाया तो आवश्यकता ने
फिर भी कठिन
लिखना
परिभाषा
प्रेम से न करे उम्मीदें
भले ही दिखे प्रेम जीवन का सार
लेकिन जीवन टिका है
जिसका नहीं दिखता आधार
तभी तो भटक रहा है

विशाल द्रुम के असंख्य पत्तों को
बेध कर छन कर
नहीं आ सकती कभी भी
मुझ तक धूप
यह जानते हुए भी
बैठा हूँ
नहीं जाता धूप में
वहीं
कर रहा प्रतीक्षा
पतझड़ की

तुम्हार स्मृति
बूलेटफ्रूफ पहने
सुरक्षित
बढ़ रहा वर्त्म पर निरन्तर
इस कामना के साथ
कभी तो खुलेगी
तुम्हारी पलकें
तब नहीं रोक पाओगी
खुद को
सिमट जाओगी
मेरी बाहों में
टूट जायेंगे
जगत के आवरण

4.7.10

क्यों

जीवन में कभी कभी
कुछ क्षण, जीवन ठहरा देते हैं
और जी चाहता है जीवन ठहरा उन्हें
परन्तु हमारे चाहने से
कुछ भी नहीं होता
परन्तु हम चाहते हैं
इसीलिए जीवन सुंदर है

जीवन जीने के लिए कुछ परिभाषाएँ
बनायी गयीं
परन्तु जो, यहाँ पर सही
तो कहीं पर गलत हैं
यह फर्क़ है सिर्फ दृष्टिकोण का
परन्तु जीवन में कोई कोण नहीं

सुंदरता को देखकर
हृदय का स्पंदन
सजीवता की प्रामाणिकता है
तो किसी के बहते हुए आँसू
बह जाते
नहीं बता पाते
अपना अर्थ
क्यों ?

22.01.2010

मेरी बेटी

पथ के पीछे छूटे मेरे चिह्न,
यू लगा लौट कर आये हैं।
तेरा खिला हुआ सौन्दर्य देख,
बीते दिन फिर दिखलाये हैं।

वह चंचल चपला हिरणी थी,
तुम दिखी मुझे जैसे हो बद्ध
वह मेरे मन में बस गयी थी,
चाह उठी तुम्हारा भी सानिध्य।

वह प्राण की प्राण बनी सजनी,
फिर भी नहीं प्राण की प्यास गयी।
दामिनि सी दमकती रही घन में,
वर्षा की ही आश में साँझ भयी।

तुम्हारी लखि बाल सरल चितवन्
मुस्कान अदा में दिखी जिमि वह।
तुम सरल शान्त खामोशी ओढ़े,
बेपरवाह बड़ी अल्हड़ थी वह।

हो करके विभोर कभी उसमें,
हो शुरू गया था जो मेरा चिंतन।
भोली भाली उस बाला ने,
कर दिया मेरे उर में मंथन।

मन के प्रपंच के द्वन्द्वों में,
बनता नैसर्गिक सौन्दर्य सम्बल।

जग की अनिर्वचनीय में,
बदलता सौन्दर्य नहीं एक पल।

अनन्त की अगणित तारिकाओं से
तुम लगी मुझे जैसे हो एक।
थम गया जो चल रहा घमासान,
मिटी भ्रान्ति शान्त मन तुम्हें देख।

बह गया उस क्षण मन बचपन में,
धँधुले वे दृश्य लगे दिखने।
बचपन का शुरू हुआ वह चिन्तन,
फिर दिखा सँवर पहने गहने।

बचपन के शुरू मेरे चिंतन में,
सौन्दर्य में खोज थी सत्य बिम्ब।
पर फँस विचार के प्रपंचों में
विकसित हो पाया न वह डिम्ब।

अनुपम माधुर्य विलक्षण अति,
बाले तेरा लख कर सरूप।
मुझे बोधि हुआ जैसे वह ही,
तेरा धारण कर लिया रूप।

तर्कों की कई कसौटी कस,
निष्कर्ष पर इस बुद्धि लौटी।
अंतःकरण भी स्वीकार उठा,
मुझे लगा कि तुम मेरी बेटी।

22.9.10

वह

धरा का ही कोई बिन्दु
नेत्र एवं कर्ण के पथ से
हृदय में उतर जाता
तब मैं भाव लोक में बह जाता
देखता स्वप्न बार–बार
पर इस बार
देख कर एक बाला
जो उत्पन्न हुआ विचार
जीवन में प्रथम बार

अवश्य था उसमें विशेष
जिसे सका न आज तक देख
परन्तु क्या
सत्य तो समझ में नहीं आया
पर उसका मुखड़ा
आह कितना मासूम
मानो सौन्दर्य हल्के घनों में घिरा चाँद–सा
जिसके चारों तरफ बना मंडल
उसी को ही घेरे

सौन्दर्य में इतनी स्वच्छता
न देखा न सुना न कहीं पढ़ा
कल्पना से परे
खड़ी थी सामने
जिसे देखकर सोच
सोचने को हुए विवश
हृदय में फूट पड़ा स्रोत
बह उठा झरना
वात्सल्य का
हृदय में उठी उत्कण्ठा
उत्पन्न हुआ भाव
जिसमें दिखने लगी
बेटी
वह

26.9.10

बचपन

बचपन की वे मधुर स्मृतियाँ, जीवन के वे स्वर्णिम दिन।
मिट्टी के जब बने खिलौने, होते थे अनमोल रतन।
अगर खिलौना टूट गया कोई, आते थे सच्चे आँसू
भूख प्यास की फिकर नहीं थी, खेल अगर कर दिया शुरू।

कभी रोकने से न रुकते, उठते थे मानो आकाश।
अपना और पराया का तब, शुरू हुआ था नहीं आभास।
गोली गुल्ली कंकड़ खर तक, वैभव से था तब व्यापार।
नीम कोलइया बेल कंडेला, खेल के बनते थे हथियार।

जान–बूझकर भीग वर्षा से, विद्यालय से आते थे।
बड़ा ताल को भरा देखकर, उस दिन जश्न मनाते थे।
पीले पीले अंगणित दादुर, चिल्लाते थे टर टर टर।
बीन बजा रहे गाल फुलाकर, लगते थे कितने सुंदर।

विद्यालय से चार बजे जब, लगती छुट्टी की घंटी।
दौड़ लगाकर चल देते थे, घर पहुँचने की थी जल्दी।
माँ के हाथों से पाकर के, गुड़ रोटी खाते भर पेट।
वैसा स्वाद कहाँ इस जग में, आज सोचने लगता मन।

माँ के स्तन को पी–पी कर, माँ के आँचल में छुपकर।
विकसित होता रहेगा जीवन, कभी न होगा परिवर्तन।
बचपन के जो बीत गये दिन, नहीं लौट कर आयेंगे।
मिट्टी के वे बने घरौंदे, अब न घर दिखलायेंगे।

बचपन में जो पावन बनकर, बचपन भर रह जाते हैं।
यौवन में बिखरा सुगन्ध वे, भूतल स्वर्ग बनाते हैं।
बचपन नहीं लौट सकता है, मगर रहे यदि वह चिंतन।
जीवन हो सकता है पावन, व्यक्ति करे यदि यह मंथन।

19.6.10

गुड़िया गुड्डे की शादी

खेल यह गुड़िया गुड्डे वाला, नहीं समझ मेरी आया।
खेल खेल में उलझा ऐसे, सुलझ नहीं जिससे पाया।
बचपन में वह बना कर रखती, गुड्डा और प्यारी गुड़िया।
एक रोज वह मुझसे बोली, आज इनकी शादी भैया।

ढोल नगाड़ा नाच नौटंकी, और बहुत बढ़िया खाना।
शादी का इतना ही मतलब, तब तक था मैंने जाना।
मैंने कहा नहीं हो सकता, पैसा कहाँ से आयेगा।
गुड़िया गुड्डे की शादी में, कौन बराती जायेगा।

कक्षा तीन मैं पढ़ता था, और पाँच वह पढ़ती थी।
शादी का मतलब वह निश्चित, मुझसें अधिक समझती थी।
गुड़िया गुड्डे की शादी में, होता कुछ भी खर्च नहीं।
बस चुपचाप देखते जाओ, अब कहना कुछ और नहीं।

फिर उसने एक एक कर, किये रस्म अरु रीति–रिवाज।
गुड़िया गुड्डे से फिर बोली, अब तुम पति पत्नी हुए आज।
शादी की दी सुना कहानी, जहाँ तलक था उसको ज्ञात।
गुड़िया को फिर साथ में लेकर, लौट आयी वापस बारात।

गुड़िया गुड्डा साथ लिटाकर, ऊपर से दिया चादर डाल।
जिज्ञासा बस पूछ उठा मैं, बता मुझे आगे का हाल।
मेरे प्रश्न के उत्तर में तब, बोली थी वह मुस्कुरा कर
इसके आगे क्या होता है, समझोगे तुम बड़े होकर।

तब का पड़ा हुआ वह पर्दा, कभी नहीं उठ पाता है।
बड़ा हुआ पर अभी तलक मुझे, सत्य छुपा दिखलाता है।

11.7.10

संस्कार

माँ का दिया संस्कार
घर के बड़ों का आचरण
विद्यालय की सीख
पास पड़ोस के लोग
समस्त परिवेश
बालक के मस्तिष्क में
तह पर तह जमता
शिशु बड़ा होकर
न चाह कर
विवश होकर
ढोता –

जब जाग्रत होता विवेक
सतर्क होता ज्ञान
उठता विचार
तब शुरू होता चिंतन
सत्य एवं झूठ में
कहाँ है अंतर
इस स्थिति में
अचेतन मन में
हाबी होते
वही बचपन के सोच
दिखाते स्वप्न
भयावना

तो क्या छोड़ दूँ चिंतन
इसलिये कि नींद नहीं आती
स्वप्न देखकर
बैचनी बढ़ जाती
इसलिये पकड़े रहूँ
वही ज्ञान

भय से बचने हेतु
शुरू कर दूँ अलापना
वही पुराना राग

आस्था पर नहीं है मेरा प्रहार
मनुष्य बनने के लिए
आवश्यक है संस्कार
परन्तु जो सत्यनिष्ठ न हो,
बदले की भावना लिये
क्रोध से सना
वस्तु से
मसीहा बनें
मसीहा नहीं हो सकता

कोई कहे साधु कैसा हो
मैं कहूँगा कबीर जैसा हो
जब आप कबीर को पढ़ेंगे
तब आप की आस्था मजबूत होगी
इसलिए
कि आप एक सत्य देखेंगे –
परन्तु बड़ों के आचरण की शिक्षा
जो देगी परिणाम
उसे भुगतना पड़ेगा
यह जानकर,
अपने बच्चों के
कोमल मस्तिष्क में
नहीं भरें विकृति
मत भरें उनमें अज्ञान
दें उन्हें परिष्कृत ज्ञान
जो पैदा करे आचार
उसी को ही कहेंगे संस्कार

2.8.10

कवि हृदय से

आज तक देखी न जाने कितनी
रूपसी,
एक से बढ़ कर एक
परन्तु आज तक उनसे विशेष
नहीं पाया संकेत,
बस देख कर
बहा प्रवाह में
सहज स्वाभाविक प्रकृति प्रदत्त
शक्ति अधीन

जाने कितनी मुस्कानें
खिल खिला उठती फूल जैसी
परन्तु खद्योत की ज्योति की तरह
उड़ जाती मानस पटल से
नहीं टिकती मुट्ठी में
रेत की तरह
नहीं छोड़ पाती
चिह्न

मुस्कानें खिलती हैं
तब वे जो कहती हैं
वह जैसे वर्षा का जल
ठहरता है धरा पर
अलग–अलग जगह पर
पुकारा जाता है
अलग–अलग नामों से

सरिता में जाकर बहता है
निरन्तर लगातार
ठीक ऐसे
मुस्कानें भी दिखती हैं हमें
अंदर
जैसे हम हैं

परन्तु हमें देखता कौन है
केवल हम
लोग देखते हैं
अदायें
वेश–भूषा
जाति
और और

युवती ने मुस्कराकर
दिया था मेरे जयहिन्द का उत्तर
सौम्यता से
मैंने देखा
सोचा
निरपेक्ष भाव से
लिख दिया
कवि हृदय से
परन्तु पाठकों
इस रचना का अर्थ
छिपा है

हर व्यक्ति के हृदय में।
समय मिले तो सोचना
जीवन में
पाये जो उपहार
प्यार दुलार
तिरस्कार
इन सबका अंबार
ढहता है
सहज स्नेह युक्त,
मुस्कान से

व्यक्ति का व्यक्तित्व
दृष्टि
ज्ञान की परिधि
सूक्ष्म से सूक्ष्म मानवीय गुण–दोष
व्यक्तित्व का सारांश
दिख जाता
मुखड़े पर
तब
जब अधरों पर
आ जाती
एक पतली स्मित

21.06.2010

रूप की रानी

जो हृदय को छू जाये,
कहतें है उसको सूरत।
जिसे देख कर श्रद्धा,
उमड़े, होती है वह मूरत।

जिसे देख कर करने लगता,
मन अपनी मनमानी।
तो फिर निश्चित कहना होगा,
वह है रूप की रानी।

केवल सस्ता प्यार हो गया

महँगाई की आज मार से, जीवन यह दुस्वार हो गया।
सब कुछ महँगा हुआ मगर बस, केवल सस्ता प्यार हो गया।
नये नये साधन आने से, जीना अब आसान हो गया।
पति पत्नी का पावन रिश्ता, लगता अब बाजार हो गया।

उच्छृंखलता अरु द्वेष घृणा ही, लगता शिष्टाचार हो गया।
क्षमा, सरलता अरु मृदु भाषा, इनका सत्यानाश हो गया।
दया उदारता करुणा ममता, वह स्नेह आँचल की छाया।
कहाँ छिपी श्रद्धा प्रसाद की, देख न पाया उसका साया।

पावन रिश्तों की बगिया में, चली स्वार्थ की ऐसी आँधी।
विवश देखता रहा परिवर्तन, जिसका रहा नहीं मैं आदी।
संजो न पाया उन मूल्यों को, लगते थे जो अतिशय प्यारे।
सच कहता हूँ, होते देखे, हृदय के भी वारे न्यारे।

धीरे–धीरे धूमिल हो रही, आज प्यार तस्वीर तुम्हारी।
मेरे बाहु शिथिल होते हैं, ढीली हो गयी पकड़ हमारी।
अक्सर जहाँ दिखाया करती, रहती थी मुझे अपनी सूरत।
अब कुछ नहीं दिखायी पड़ता, जमी धूल की इतनी परत।

हो सकता यह मेरा भ्रम हो, नहीं प्यार को मैंने जाना।
इस दुनिया में प्यार से बढ़कर, हो सकता क्या और ठिकाना।
आज मिलावट के इस युग में, मिल सकती क्या कहीं शुद्धता।
ऐसे में क्या रख पायेगा, प्यार आज भी अपनी पवित्रता।

प्यार प्रश्न यह नहीं है तुमसे, तुम तो हो प्रश्नों से ऊपर।
जग के अंतिम केन्द्र बिन्दु हो, मूल्यों में तुम सदा उच्चतर ।
हर भूषण में आज श्रेष्ठतर, जैसे भ्रष्टाचार हो गया।
प्यार हृदय से निकल देह पर, लगता मुझे सवार हो गया।

होती जो आसक्ति देह से, वह चिर काल न रह पायेगी
बाँध भला मधुकर को मकरंद, कितने समय रख पायेगी
जीवन का उत्कर्ष प्यार है, जो भी चाहे प्यार को पाना।
कभी नहीं यह हो सकता है, पड़े न उसका मूल्य चुकाना।

दो विचार का जहाँ सम्मिश्रण, एक बिन्दु में मिल जाता है।
प्यार वहीं पर बनकर दीपक, निज प्रकाश को फैलता है।
प्यार को अभिषंग में भर के, जाता है जो समय निकल।
उस स्मृति को साथ में रखकर, मानव तू जीवन भर चल।

8–7–10

नारी

छल फरेब अथवा माया है, कैसे कह दूँ नारी।
जीवन देकर सबको पालती घर की है उजियारी।
घर की है उजियारी, पर किसने भी उसे न जाना।
अपने ढंग से अपने युग में, रँगता रहा जमाना
कभी न्याय नारी को मिला हो, कहीं नहीं दिखलाता।
है इतिहास साक्षी इसका, उससे क्या छिप पाता।

नारी महिमा मंडित करना, है बिलकुल बेमानी।
आरक्षण न मिटा सकेगा, नारी की परेशानी।
नारी की परेशानी, जिसको हम सब जान रहे हैं।
आज तलक हम नारी को, इंसान न मान रहे हैं।
दोहरे हैं सब मानदंड, खोखली धर्म की बातें।
दुनिया के युग पुरुष भी इस पर, मौन साध रह जाते।

28–4–10

मेरा जीवन

जीवन देखा
तुम्हारी तरह
कोमल मधुर सरल
झरना–सा
सुरभित शीतल धवल
बहता कल–कल
उद्वेलित तरंगों में डूबता
पर लगता
उड़ रहा है गगन पर
गिरता बूँद–सा
बार–बार
फिर भी
सुव्यवस्थित
तुम्हारे दाँतों की तरह

जीवन जिया
तुम्हारे बिना
अतृप्त विकृति घृणित
तिक्त रुग्ण विषाक्त
धुआँ–सा
कहीं नहीं ठिकाना
इस भटकन में जाना
यथार्थ रिश्तों का
फिर भी बाकी है पहचान
चेहरों की
घिरा हूँ विश्वास में
जिसने दिये आँसू
घाव पर घाव देती रही
श्रद्धा
नहीं फेंक पाया
वर्जना का बोझ
दल–दल–सा समाज
जिसमें धँसा
सुख–दुःख–समत्व
रटता रहा
पालतू तोते की तरह

सोच रहा हूँ यह होता वह होता
परन्तु होता क्या
नहीं जानता
परन्तु यह निश्चित है
अगर मेरे पास
मनुष्य होने का सबूत न होता
स्वतंत्र उस खग की तरह
फ्रीडम मान्यताओं से
मुक्त आबाध
विचरण करता
तुम्हारे केशों की तरह
काश
मेरा जीवन ऐसा होता

6.6.2010

अंकुर – 1

मचल कर अंकुर
पूछता है वृक्ष से
कौन है मेरी माँ
किसकी मैं संतान
तरु सचेत होकर
थोड़ा–सा मुस्कराकर
तू मेरी है संतान
मुझसे होगी तेरी पहचान
अंकुर ने कहा पिता जी प्रणाम
बतायें आप मेरी माँ का नाम

वृक्ष कुछ सकपकाया
फिर अंकुर को समझाया
मेरी बीज से हुआ है तेरा निर्माण
क्या इसका भी चाहिए प्रमाण
प्रमाण का नहीं है प्रयोजन
कौन मेरी माँ जानना चाहता मन

वृक्ष चिंतन में पड़ गया
धरती तेरी माँ सहज कह दिया

अंकुर बोला सहज भाव से
धरती मेरी माँ है कैसे
मेरे भोजन खनिज लवण को
जड़ें आपकी खींच रही हैं

मेरी माँ ये कैसी माँ है
मुझ अबोध को मिटा रही है
पिता श्री मैं जान चुका हूँ
अरु खुद को पहचान चुका हूँ
बीज आपका अरु यह धरती
ने मेरा निर्माण किया है
महत्वपूर्ण लेकिन यह तम है
जिसने मुझको प्राण दिया है

07.06.2010

अंकुर – 2

जाने कितने चित्र बनते देखे
आकृतियाँ धुँधली होती
बिसरती गयीं
लोकगीतों की तरह
उग आये ऐसे गीत
बिना नाम के स्वर से
जो पहले नहीं दिखते थे
हृदय तलहटी यदि सूख जाय
तो भी रह जाती हैं स्मृतियाँ
जिसमें अदृश्य चित्र दृश्य होते रहेंगे,

विचित्र–सी अंकुर की वेदना
सभ्य समाज के गले नहीं उतरेगी
प्यार की पराकाष्ठा
बंद रहेगी पुस्तकों में
काल खण्ड के साथ बदलती परिभाषायें
तलाशती रहेगी उस दिन को
दर्द का अर्थ सिर्फ दर्द
समझेंगे जब मनुष्य

मस्तिष्क का भोजन
केवल ज्ञान है
तो हृदय की खुराक
केवल प्यार है–

जो हृदय को दग्ध करे
वितृष्णा भरे
नैराश्य में डुबा दे
संसार उसे चाहे कितना महान् कहे
पर मेरे पास
उसके लिए नहीं होगा
शब्द

8–5–10

देवी

एक भोली भाली लड़की थी
मेरा बहुत आदर करती थी
पर बहुत नटखट थी
मुझे चिढ़ाकर खूब हँसती थी
एक दिन उसका देखकर क्रियाकलाप
मेरा ह्रदय गया काँप
मुझे इस तरह अचानक देख अधीर
वह भी हो गयी गम्भीर
फिर बोली मुस्कराते
आप को देख इस तरह शरमाते
मुझे संकोच नहीं होता यह कहते
अच्छा होता आप लड़की होते।

मैंने दृष्टि जब उसके दृष्टि से मिलायी
तब वह सहमी कुछ घबरायी
मैंने कहा देवी वैसे तो तुम छोटी हो
पर बातें करती बड़ी हो,
इतना सुनते ही वह चिढ़ गयी
और पहली बार मेरे सामने
तन कर खड़ी हो गयी
आप भी अच्छा मजाक करते हो,
मुझे देवी कहते हो
मैंने कहा बैठिये होकर शान्त
देवी कहने में क्या है भ्रान्त
वह बैठ गयी फिर बोली
पुरुष पहले नारी को बनाता है देवी
फिर जला देता है उसको जैसे होली
इसलिए मुझे नारी ही रहने दो
मत बनाओ मुझे देवी
अब इन कल्पनाओं से बाहर आओ
मुझे हवा महल में मत बैठाओ।

तुम बात सत्य कहती हो निश्चित
फिर क्यों हो रही हो क्रोधित
जब तुमने मेरी तुलना किसी लड़की से की
बता सकती हो किस आधार पर की
कुछ बातों का आधार नहीं होता है
सिर्फ बातें होती हैं
मेरे लिये जो टिप्पणी तुमने की थी
बिना सोचे समझे ही कह दी थी
मेरी बात पर वह मुस्करायी
बोली....
मैंने जो महसूस किया कह दिया

तुम्हारे इस अनुभव को
मैंने बुरा नहीं माना
क्योंकि तुमने कोई नया शोध
नहीं कर डाला
मुंशी प्रेमचन्द ने इस विषय पर
कुछ लिखा है।
क्या तुमने कभी गोदान पढ़ा है?
मनुष्य केवल अनुभव ही तो लिखता है
मेरी समझ में यही आता है

वह मेरी बात बड़ी तल्लीनता से सुन रही थी
मुझे सचमुच देवी लग रही थी

यह सभी मानते हैं कि सत्य एक है
फिर भी रास्ते अनेक हैं
क्योंकि रास्ता मनुष्य बनाता है
सत्य नहीं बना सकता
मैंने तुम्हें देवी कहा
क्योंकि तुम मुझे देवी लगीं
निश्छल धवल सरल गंगा की तरह पावन
मुझे समझने पढ़ने में निपुण
यदि नारी गुण पुरुष को
महान् बना सकता है
तो क्या स्वयं नारी को
देवी नहीं बना सकता
मेरे विचार से नारी देवी है
बस देखने की दृष्टि चाहिए
लोग तो पत्थर में देवी को देखते हैं
मैंने तुम में देवी को देखा
क्या गलत किया समझी
वह बोली समझ गयी
मैंने कहा क्या समझी
यही कि आप बुद्धू हैं
और खिल–खिलाकर हँस पड़ी

31..8.2010

तुम्हारी याद

जब याद तुम्हारी आती है, जिन्दगी ठहर–सी जाती है।
लगता जैसे हम वहीं खड़े, चलते ही रहे पर नहीं बढे।
वह मधुर खनकती हुई हँसी, छम छम पायल ज्यों कहीं बजी ।
बह जाता हूँ जब भावों में, लगता जैसे हो पास खड़ी।

वह चेहरा केशों से उलझा, जिससे सौम्यता बिखर रही।
वे झुकी हुई तेरी पलकें, न पता मुझे क्या छिपा रही।
वह भोली–भाली–सी सूरत, लगती मुझको इतनी प्यारी।
जी भरा देखकर कभी नहीं, इतनी सुन्दर इतनी न्यारी।

छूकर तुमको ऐसा लगता, छू लिया किसी ऊँचाई को।
आलिंगन में जब बद्ध हुई, खो गया किसी गहराई में।
चेतना शून्य कर देती थी, तेरे अधरों की मुझे छुवन।
बढ़ते हिय के स्पन्दन में, खो जाता था तब मेरा मन।

है याद मुझे अब भी वह दिन, देखा तुमको जब प्रथम बार।
जब दृष्टि पड़ी तुम पर उस पल, अहसास हुआ आयी फुहार।
तेरे तन की भीनी सुगन्ध, भर देती थी उर में उमंग।
मदहोश हो जाता ऐसा मन, उड़ने लगता मानों पतंग।

मन क्लान्त घिरा जब सोचों में, दिखती फरेब यह दुनिया है।
हे स्वार्थ सिद्ध करने को तुम्हें, कोई काम यहाँ न घटिया है
तब झुलस रहे इस सीने में, आ जाती याद तुम्हारी है
यह याद ही मेरी औषधि है, हर तरफ घिरी चिंगारी है।

10.07.2010

कवि का सौन्दर्य

पृथक् डाली से कर के फूल, गुलदस्ता लेते बना जरूर।
मगर ये बिना प्राण के फूल, नहीं दे सकतें कभी सरूर।

चमकता इनका यह सौन्दर्य, दिखता अभिनय बस बेजोड़
नहीं हँस सकता कोई भी फूल, जिसे डाली से दें यदि तोड़।

बिहँसता देख सौन्दर्य पुष्प, फूट पड़ता कविता का स्रोत
दिखाता कवि को सदा आलोक, कवि के सृष्टि का सौन्दर्य मूल।

गूढ़तम सौन्दर्य का है रहस्य, विचारों से बँधता न दिखाय।
देखिए जी भर के सौन्दर्य, मगर छूने का न करें उपाय।

प्रकट होता जब भी सौन्दर्य, कवि को दिख जाता निज कर्म।
दे देता रचना को आधार, देख लेता जीवन का यथार्थ।

डूब कर सौन्दर्य के ही गर्त, खोज लेता कवि तम में पंथ।
तोड़ पाता जिससे भ्रम फाँस, देखता दिखा गये जो संत।

25–7–10

कविता

कविता ही मेरी प्रेमिका है, मेरा दर्शन है, मेरी गीता है।
जीने का दिया जिसने मकसद, मुझको कर दिया पुनीता है।

यह सच है भाव लोक में बह, होती कविता की सृष्टि है।
238249250कल्पना की नीहारिका है बस, पर पास इसके दिव्य दृष्टि है।

स्वच्छंद बहुमुखी सुरभि युक्त, बरसा देती आनन्द का रस।
सत् चिंतन कर दे तत्त्व ज्ञान, कर देती मानव को कृतार्थ।

करुणा के रस में बहे बिना, खुद को पहचान न पाओगे।
बिन आत्मग्लानि का चषक पिये, परिपूर्ण नहीं हो पाओगे।

हृदय में उमड़ा कर स्पंदन, दे देती है मन को स्फूर्ति।
माना कि न इसमें स्थिरता, पर कुछ न कुछ तो करती पूर्ति।

जीवन पथ जब झिलमिल –झिलमिल, पाता हूँ खोज न कहीं सार।
इस स्थिति में मेरा चिंतन, कविता का ले लेता आधार।

01–8–10

प्रभात

गिरि शिखर से उठकर
अंशु माली
चल पड़े यात्रा पर
ओज फैला कर
वृद्ध घनों का आलिंगन किया
प्राची स्वर्णिम
पहाड़
लगे पिघलने
आया प्रभात

जाग गये जीव
शुरू हो गया उद्यम
क्षुधा की पूर्ति का
क्षुधा जो सबमें है
पर अलग–अलग हैं तेरे
प्रकार
रात को भरते सभी
उदर
और प्रभात
कर जाता खाली

फूल बोला तितली
आओ बैठो
तितली उड़ी तुम बासी हो
कहती गयी

थक गयी
उतरी देखा तमाम फूल खिले
पर सब को चूम रही थी
सुनहरी धूप
तितली ने सोचा
ये सब झूठे हैं
और मुँह से निकल गया
यह क्या कर दिया प्रभात

प्रकृति ने रंग बदला
हम नहीं बदले
इसलिए कि मक्कारी बसती है रक्त में
मानवता रास्ते मेड़,
निरीह जीवों की तरह कट रही
आधुनिक भारत में
मनुष्य मनुष्य का रक्त चूस कर
उड़ रहा गगन पर
इठलाता
कानून धर्म न्याय की परिभाषा
जाने कितनी बार
आदमी ने बदल डाला
एक सुन्दर–सा नाम देकर
रक्तपात को कहा उचित
दिया पारितोषिक
फिर भी बची है आशा, स्थिति
बदलेगी
आयेगा जरूर प्रभात

15–9–10

याद तेरी कभी न मिटेगी

याद तेरी कभी न मिटेगी।
जिन्दगी जब तलक यह रहेगी।

चाँदनी से नहायी यह धरित्री
मेरे मन को लुभा न रही है
आ रही वायु में जो यह खुश्बू
सिर्फ दिल को दुखा ही रही है

तुम समझ सकती हो मेरी पीड़ा
बात कहते न मुझसे बनेगी – याद तेरी

अब कहीं न मुझे कुछ सुहाता
मन में उठती न कोई लहर है
हर तरफ दिख रही है खामोशी
हाल हो गया मेरा इस कदर है

शान्ति मुझको कहाँ अब मिलेगी
बेकरारी ही हर दम बढ़ेगी – याद तेरी
हर तरफ छाया है अब अँधेरा
दिख रहा मुझको अपना न पथ है

एक उम्मीद के ही सहारे
चल रहा मेरे जीवन का रथ है।
जब तक होंगे नहीं तेरे दर्शन
यह तड़प भी न तब तक घटेगी – याद तेरी

27.01.2010

मन ही माने न

मन ही माने न जब हम मनायें
क्या करें कुछ समझ में न आये।
आशिकी का जब उठता धुआँ है
तब दिखता उसे कुछ कहाँ है
बस वही एक दिखती है सूरत
जिसको पाने की केवल जरूरत
फिर यही सोचते हर दम जायें
कैसे उनको गले से लगायें–मन ही......।
हो मोहब्बत गयी मुझको उन से
पर कहूँ– उनको मैं किस जतन से
जब कभी सामने से वे आते
चाह कर भी नहीं कुछ कह पाते
रह गयी दिल की दिल में दबाये
चाह उनको बता ये न पायें–मन ही.........।
चाहता उनको जाने मैं कब से
पर मिलेंगे क्या वे इस जन्म में
मेरा सब कुछ है उनको समर्पित
कर चुका हूँ मैं भी यह सुनिश्चित
है प्रतीक्षा घड़ी कब वह आये
उनकी बाँहों में जब हम समायें, मन ही.......।

20–01–10

मुकाम

अक्सर कभी जब भी मेरी
तुम पर नजर पड़ी
तो भावनाओं को सका
न रोक उस घड़ी

अब भी जब आती याद है
मुझको जो वह कभी
लगता है जैसे तुम दिखी
थी बस अभी अभी

जीवन के सारे दृश्य को
देता समय बदल
दुनिया में कुछ भी न कभी
रहता सदा अटल

जो रिक्त या बदले नहीं
वह सिर्फ होता प्यार
यह सत्य है इस सत्य को,
करें आप भी स्वीकार

जब दिल किसी के वास्ते
बेहाल होता है
आदमी का जब कभी
यह हाल होता है

जिन्दगी का तब दिखाने
लगता है मुकाम
जो पा लिया फिर उसके,
लिए शेष है क्या काम

18–01–10

धूर्तता

मैं कोई कविता नहीं
अपनी कमी कह रहा हूँ
आप विश्वास कीजियेगा
यह बात मैं दिमाग से नहीं
दिल से कह रहा हूँ
इसलिए हिचक रहा हूँ

मुझे शिकायत है अपने आप से
मैं खुद को बदल नहीं पा रहा हूँ
धोखा खाता हूँ, विश्वास टूटता है
रोता हूँ कुढ़ता हूँ सोचता हूँ
परन्तु झूठ नहीं बोल पा रहा हूँ

धोखा खाता हूँ कभी अपनों से
कभी अनजान कभी तथाकथित मित्रों से
फिर भी फँस जाता हूँ
धूर्तता और मक्कारी के चंगुल में

मेरी अपनी कभी है ईमानदारी
छोड़ नहीं पाता हूँ वफादारी
किसी का दर्द क्यों मुझे सताता है
किसी को धोखा नहीं दे पाता
धोखा खाकर मायूस हो जाता
कोई ब्यंग बाण से मरता
तो कोई सौ रुपये का सामान
दो सौ में दे जाता
मैं सोचता कितना होशियार है
मुझे बात बात पर बेवकूफ बना जाता है
यही है मेरा दुर्भाग्य
मैं धोखा खाता हूँ
परन्तु फिर भी किसी को
धोखा नहीं दे पाता हूँ

सच है आज के युग में वे हैं चतुर
जो झूठ बोलें, दिल को तोड़ें
किसी को चौराहे पर छेड़े
धोखा देने में कुशल
देखने में लगे सरल
वही हो रहे हैं आज सफल

मैं अपना दर्द कह रहा हूँ
जिन्दगी का मर्म कह रहा हूँ
आप मेरे जैसे नहीं जीना
नहीं करना ईमानदारी का नशा
न करना किसी पर विश्वास यदि करना
तो घाव लगने पर संभल जाना
वरना मेरे जैसे छटपटाओगे
कहीं भी सुकून नहीं पाओगे।

कभी नहीं ओढ़ना ईमानदारी का कफ़न
आत्मा और आत्म तत्त्व को कर देना दफन
जीना बेईमान बनकर
जो मस्तिष्क में सोचना
जुबान से बोलना और
हृदय में किसी के लिए
नहीं रखना ठौर
तभी आप बन सकते हैं
मानवता के सिर मौर

मैं अपनी वेदना में बह गया
बुरा लगे तो माफ करना
लेकिन हर किसी पर इतबार
बहुत समझ कर करना इकरार
ठगों का साम्राज्य है
भ्रष्ट ही विशिष्ट है
धूर्त ही अब शिष्ट है
जो खो चुका है आचार विचार
उसी की हो रही जय जयकार
आप चाहे जहाँ रहें
चाहे जिस देश में
किसी भी भेष में
छल प्रपंच के इस परिवेश में
जीना नहीं कभी मेरी तरह
यही है अन्त में मुझे आप सबसे कहना
धूर्तता से सदा सतर्क रहना

14–6–10

प्यार

बिना प्यार के रह जाता है, जीवन यह बस खाली।
सब कुछ पाकर भी न कभी, मिल सकती है खुशहाली।
जग की सारी निधियों में जो, है सबसे अनमोल।
नहीं प्यार का इस धरित्री पर, हो सकता है मोल।

कोशिश कर के कर सकता है, मनुज स्वप्न साकार।
प्रयत्न से मंजिल मिल सकती है, मगर न मिलता प्यार।
जग में आने का रहस्य भी, छिपा प्यार के बीच।
जो भी इसे जानना चाहें, निश दिन प्यार को सींच।

कर दूँ मैं अभिव्यक्ति प्यार की, है नहीं शक्ति हमारी।
हृदय का जो विषय बुद्धि, क्या समझेगी बेचारी।
कितना कर ले ज्ञान यत्न पर, कुछ हृदय की बातें।
अच्छी तरह समझ नहीं पाता, या कहता शरमाते।

कुछ भी हो पर एक बात, जिन्हें प्यार यहाँ मिल जाता।
जीवन के गूढ़तम् रहस्य को, सहज समझ वह पाता।
हो जाता है धन्य प्यार तुमको, पाकर के प्राणी।
जीवन का पूर्णत्व प्यार है, कवियों की है वाणी।

प्यार जगत् का सार मगर, दुर्लभ है प्यार को पाना।
मिलता जिसको प्यार शेष, रहता फिर नहीं कुछ पाना।
जीवन को आलोकित कर, भरता उत्साह निराला।
कभी रिक्त न होने वाला, अद्भुत प्यार का प्याला।

सुन्दरता में आकर्षण है, जब तक है मन में उन्माद।
बिना प्यार जीवन सुव्यस्थित, रह सकता है न निर्बाध।
जीवन को गतिमय रखना है, तो है प्यार जरूरी
बिना प्यार के जीवन जीना, लगता ज्यों मजबूरी।

प्यार–सा पावन उर को भावन, और नहीं कुछ होता।
जो यह सत्य जान लेता है, वह फिर नहीं भटकता।
प्यार ज्योति है जिस प्रकाश में, सब कुछ दिखता साफ।
बिना प्यार किये रह जाता है, जीवन केवल हाफ।

10–9–10

मेरे मीत

नहीं मिल पाये तुम मेरे मीत, प्रतीक्षा में गया जीवन बीत।
तुम्हारे लिए हिय छटपटात, मनहि की मन में रह गयी बात।
कभी सोचा न था मेरे मीत, कि तुम से हो जायेगी प्रीत।
पता नहीं क्या मैं तुम में देख, बह गया था भावना के वेग।

खोज मेरी हो न सकी पूरी, बनी रही सदा बीच दूरी।
तड़प मेरी कभी घटी फिर बढ़ी, देखती दूर से तुम बस खड़ी।
जानता खुद की रही कमी, तभी तो प्यास न बुझी कभी।
दिखाती तुम तब तक सजीव, नहीं तुम तो हो गया निर्जीव।

मेरे जीवन की तुम आधार, न तुम से ही कर पाया प्यार।
प्रेम का समझ न पाया अर्थ, बीत गया जीवन ही यह व्यर्थ।
नहीं मेरे अवगुण की गिनती, करूँ फिर कैसे मैं विनती।
नहीं कुछ भी तुम से अज्ञात, जानती हो मेरे हिय की बात।

हृदय में उठती यही पुकार, तुम्हें जी भर लूँ खूब निहार।
समझ लो यह मेरी खुदगर्जी, पूर्ण कर दो तुम मेरी अर्जी।
प्राण के बिना है जैसे देह, बिना जल के ज्यों उड़ते मेह।
सलिल से पृथक् न जीती मीन, तेरे बिना जीवन मेरा महत्वहीन।

तुम्हारे दरश की लेकर आश, सह लेता मान और उपहास।
समर्पण करो मेरा स्वीकार, प्राण के प्राण मेरे आधार।
अश्रु बहते लखि खुद का हाल, मगर तुम कर सकती हो निहाल।
अलौकिक देख तुम्हारा रूप, बदल जायेगा मेरा सरूप।

दीप्ति तुम से मेरी दीप्ति मान, तुम्हारे बिना ये मेरे प्रान।
विकल हैं सहते सहते ताप, यह जीवन बन गया जैसे शाप।
मगर मुझे रहा पूर्ण विश्वास, नहीं तुम करोगी मुझे निराश।
खोखला पागल–सा मेरा भेष, दरश दे हर लो सकल कलेश।

6–9–10

फूल

केवल दर्शन मात्र से जो बिसरा दे शूल।
भूतल पर यदि है कोई तो बस केवल फूल।।

लिये मृदुलता मनोहरता अति कोमल सुकुमार।
निज सुगंध से प्राण में करते नव संचार।
सह पाते नहीं वायु का, कभी तीव्रतम वेग।।
भूतल पर जाते बिखर, फिर भी न उद्वेग।।

मिट कर भी कहते रहे सुन्दरता का अर्थ।
पर मानव समझा नहीं फूल त्याग तेरा व्यर्थ।।
सुंदरता पर मुग्ध हो, लोग रहे तुम्हें तोड़।
जैसे ही मुरझा गया वैसे देते छोड़।।

कोई सलूक कैसा करे, पर तू बे परवाह।
मिलकर के भी धूल में दिखला देता राह।।
थाह न पा सकता कोई फूल की गहरी पैठि।
मैं तो केवल दूर से, देख रहा हूँ बैठि।।

भाव सदा सुन्दर बने उपजे शुद्धि विचार।
फूल बताते सीख यह जो जीवन आधार।।
भूतल पर बिखरे हुए नाना रंग के फूल।
सुंदरता सब में बसी, जो है सत्य का मूल ।।

13–8–10

आशा

घावों के निशान कभी न मिट पायेंगे, कितना करें प्रयास मगर वह रह जायेंगे।
जीना है तो फिर होगा, भूलना जरूरी, भूलने से ही घट पाती पीड़ा से दूरी।
छा जाये जब घोर निराशा, दिखती हो हर तरफ उदासी।
मिट जाये सारी सुगन्ध जब, जीवन लगे फूल ज्यों बासी।
एक दीप–सी जलती रहती, अगर टिकी मन में हो आशा।
तो निश्चित है धीरे–धीरे, छँट जायेगी घोर निराशा।

कभी कभी ऐसा लगता है, लिखी हुई पुस्तक की बातें।
केवल झिल–मिलाकर रह जाती, जब यथार्थ की लगती घातें।
पर इसका यह हुआ न मतलब, जीवन की बदलें परिभाषा।
कष्टों के लें घेर बउण्डर, फिर भी छोड़ें कभी न आशा।

कल्पना से भी परे दृश्य को, जब यह दिखला देता जीवन।
अपना ही कर आगे बढ़कर, अगर काटना चाहे गरदन।
खो जाये कोई अतिशय प्यारा, देकर के अगणित अपवादें।
कैसे मन को थिर कर पायें, बिसरा दें अनहोनी यादें।

पर इन यादों में खो करके, खुद को खोना क्या बुद्धिमानी।
जो अपने साधे से सधे न, उसके बनो खोने के आदी।
अपना जीवन कभी न अपना, यह तो है प्रकृति धरोहर।
इस आशा से बढ़ो निरन्तर, रहा जगत् में न कुछ स्थिर।

जीवन में मत आशा छोड़ो, वही बड़ा है सबसे सम्बल।
आज नहीं तो कल आयेगा, निश्चित एक रोज सुंदर पल।
अपनापन के इस चक्कर से, जीवन को कुछ देर निकालो।
और रंग भी हैं भूतल पर, जरा दृष्टि तो उन पर डालो।

दुःख के भी भीषण प्रवाह में, बहो मगर पकड़े रहो आशा।
कोई चित्र तो ऐसा होगा, जिसे देख कर मिले दिलाशा।
अगर नहीं तो धैर्य न खोयें, चित्र बना सकता मन कितने।
जीवन को अनवरत बहने दो, सुख दुःख तो इसके हैं गहने।

27–7–10

जिसे देखकर

जिसे देखकर देखने को कहे दिल,
उसे खूबसूरत समझ लीजिएगा।
जिसे प्राप्त कर फिर रहे शेष न कुछ।
वह होती है मंजिल यह कहना पड़ेगा।।
जिसे पीकर फिर न कभी प्यास लगें।
क्या ऐसा कोई पेय यहाँ पर मिलेगा।।
दिखाती है जैसी न वैसी है दुनिया,
कभी आजमा के इसे देखिएगा। जिसे देख......
समझ में मेरे बात अब तक न आयी।
यह क्या जिन्दगी है कहाँ से ये आयी।।
न अब तक कोई रास्ता खोज पाया।,
बस चलता रहा भीड़ के पीछे पीछे।।
जो मैंने किया लिख रहा इसलिये हूँ।
कि यह काम बस आप मत कीजिएगा। जिसे देख.....
चुरो सकते तो दिल किसी का चुराओ,
मिटा सकते हो तो मिटा डालो खुद को,
बना सकते तो ऐसा भारत बनाओ,
जहाँ पर किसी को भी आँसू न आये।
अगर दिल में है देश का प्रेम बाकी,
तो फिर आप भी काम यह कीजिएगा। जिसे देख.......

16–01–10

तुम ही आज मेरे

तुम ही आज मेरे जीवन के बने हुए आधार
क्योंकि मैंने तुमसे सीखा क्या होता है प्यार
जब करता मैं याद तुम्हारी
बन जाती मन में छवि न्यारी
दिख जाता वह प्यारा मुखड़ा
चाँद का जो था कोई टुकड़ा
तुम में ही अपने जीवन का खोज रहा हूँ सार। तुम....
तुमने कैसा खेल खिलाया
तेरा भी मैं बन नहीं पाया
नित नित नये घाव को पाकर
जीवन जीता तड़प–तड़न कर
क्या तुम कभी समझ सकती हो मेरी आर्त पुकार। तुम.....
तुम से भी क्या छुप सकता है,
क्या ऐसा भी हो सकता है।
तुम ही हो एक मीत हमारे,
मेरे प्राणों से भी प्यारे।
अब मैं बात आखिरी कह दूँ हो गया तुम से प्यार।
तुम ही आज मेरे जीवन के बने हुए आधार।

अद्‌भुत रचना रही तुम्हारी

अद्‌भुत रचना रही तुम्हारी
चेहरे से बिखरे उजियारी
वायु से उड़ रहे तेरे कुंतल,
मचल रहे तेरे ओष्ठ चूम कर।
ऐसा लगता स्वच्छ गगन पर,
खुले अंग बिखरे हैं तारे।
जब बिहँसते हैं अधर तुम्हारे
लगती सकल सृष्टि में न्यारी– अद्‌भुत रचना
ज्यों प्रभात में लगती प्राची,
है कपोल की यों अरुणाई।
ग्रीवा से लेकर नाभि कटि तक,
लगता जैसे जल–प्रपात है।
सागर–सा उन्मत्त है यौवन
बँधा बाँध मर्यादा सारी। अद्‌भुत रचना......
वैसे तो तेरे अंग अंग में,
लहराता जीवन तरंग भर।
विपुल भावनाओं के स्वर को,
झंकृत कर देती तुम क्षण में।
बस केवल दृष्टि वर्षा से
मुझे भिगो दो समझ भिखारी। अद्‌भुत रचना ....

30–11–10

प्यार और परिणय

विचारों में आये झंझावात,
प्यार फिर भी नहीं होता क्लान्त।
बना रहता वह सदा ही शान्त,
सर्दी गर्मी हो या बरसात।

मार्ग यदि हो जाये अवरुध,
तो संघर्ष उसके नही विरुध।
स्वयं करके कोई नया उपाय,
रास्ता लेता प्यार बनाय।

मगर परिणय इसके विपरीत,
नहीं अपना पाता यह नीति।
विचारों में जब होता द्वन्द्व,
परिणय तब होना चाहता स्वच्छन्द।

स्वतंत्रता उचित नहीं समाधान,
सामंजस्य पर दे दोनों ध्यान।
प्रेम में छिपा है ऐसा रहस्य,
बदल सकता जो सारा दृश्य।

प्यार की पकड़े अजब तरंग,
परिणय में नित भरे नयी उमंग।
महकता रहेगा जीवन कुंज,
प्यार का है ही ऐसा पुँज।

20–7–10

घायल

घायल को देखकर लोगों ने, समझा करता कोई क्रीड़ा है।
जो हुआ कभी भी न घायल, वह क्या जाने होती पीड़ा है।
ताज्जुब होता अकसर मुझको, छल छद्म की जो करते बातें।
आते जब कभी सामने हैं, मेरा ही दोष बता जाते।

मैं यदा कदा विह्वलता में, बहता रहता छटपटाता हूँ।
आँखों से नींद उड़ जाती है, स्वयं से भी घबरा जाता हूँ।
मेरे चिन्तन से बहुत परे, मानव हृदय तेरा रहस्य।
मानव न होकर कुछ भी होता, यदि चल पाता कहीं मेरा वश्य।

सोचने मात्र से ही दिल को, चुभने लगता ज्यों कोई शूल।
मेरे ऊपर वर्षा करते, लोगों के रहते ऐसे फूल।
जब लगती चोट हृदय पर है, तो ऐसा घाव बनाती है।
जो मलहम समय लगाता है, उससे भी न मिट पाती है।

सरलता पर सदा हुई हावी, हर तरफ कुटिलता दिखलायी।
चातुर्य वाक् शक्ति के आगे, सच्चाई नहीं ठहर पायी।
मैं घायल हूँ सुन बात मेरी, हे मानव तुम मुस्कराओगे।
कहीं घाव नहीं यह घायल है, बस पागल मुझे बनाओगे।

28–7–10

क्षमा

मैं बिना तुम्हारे पल पल घुट, जीवन को ढोता रहता हूँ।
बिन मंजिल की इस यात्रा मे, न हँसता हूँ न रोता हूँ।
तुमको निहार कर कभी तृप्ति, हो पाये हैं न मेरे नयन।
आँखों से ज्यों होती ओझल, हो जाती फिर शुरू वही जलन।

बुझे प्राण की प्यास तबहि अपनी, जब लूँ मैं निहार तुम्हें जी भर।
आनन्द अखंड के होते वे क्षण, सुख और कहाँ अस भूतल पर।
तुमसे करि नेह बँधी रसरी, नहीं छूटत कोटि उपाय कियें।
जब ध्यान हटावन चहौं तुमसे, उत्पात तबै कर देत हिये।

हर प्राण को मेरे लिये तुमने, प्रिय प्राण तरस अब तो खाओ।
वह सुछवि मोहनी सुखद रूप, प्यासी अखियन को दिखलाओ।
बन गयी गरज यह मेरी मरज, इस मरज की औषधि केवल तुम।
मेरा रोग वेदना हर पीड़ा, तुम समझोगी यह जानम हम।

उठि जात है रात को नींद प्रिये, मन भीरु न थिर होय पावत है।
बिन संग तुम्हारे अकेले हमें, सुख शान्ति न पल भर आवत है।
तुम सा प्रिये मेरो और नहीं, हम और न काहुक जानत हैं।
बिसरा दो अगर त्रुटि मुझसे हुई, लो तुम से क्षमा हम माँगत हैं।

16–8–10

बंद हो तुम

धरा पर
प्रकृति द्वारा प्रदत्त
मानव द्वारा विकसित
समस्त वैभव
ठहरा कब

अकलन होता है
उसका उससे
बाद में
श्रेष्ठ अन्य
दिखता और

तो क्या
बहता मानव
खोजता है
खुद को
कहाँ हूँ

बनते मानदण्ड
ढहते हैं
देखा है
इतिहास के
साक्षी हैं वह

इस बदलाव में
जो बदला नहीं
हृदय जिसमें उतर कर
बंद हो तुम

नहीं निश्चित परिभाषा
क्या है प्यार
जरूरी मजबूरी
मानो व्याधि की दवा
या ठौर

कुछ भी हो
भूतल पर
प्यार से बढ़कर
कुछ और
तो प्यार

विघटन होते देखा
स्वयं का
अस्तित्व बिखर रहा
फिर सहेज कर रखना
कठिन लगता प्यार

तो क्या प्यार भी
बिकेगा मिलेगा बाजार में
उधार में
या माँगने से

कदापि नहीं
प्यार मिलेगा प्यार से
उत्कर्ष एवं त्याग से
बलिदान से
अथवा महान् कार्य से

खोज रहा हूँ
मैं भी तुम्हें प्यार
तुम ही बता सकते हो
मेरे मुक्ति का
पथ!

18–6–10

जैसे मेरे खो गये प्राण

मैं भटक गया हूँ आज तलक, क्यों भटक गया यह पता नहीं।
तुम में ही खोज रहा हूँ मैं, क्या खोज रहा पर पता नहीं।

मैं दौड़ लगायी बहुत जोर, पर जा पाता हूँ दूर नहीं।
चौराहे तक जाकर के भी, बस आ जाता लौट वहीं।

तेरे केशों में अभी तलक, उलझी हुई बुद्धि हमारी है।
दुनिया में तू सबसे अजीज, तू ही मुझे सबसे प्यारी है।

सुख कहाँ छिपा है दुनिया में, सच कहता हूँ मुझें ज्ञात नहीं।
तेरी मुस्कान देखने से, बढ़कर मुझको सुख कहीं नहीं।

मेरी बस यही कामना है, तुम होना मुझसे खफा नहीं।
मैं भूल करूँ तो मेरी भूल, पर देना मुझको दण्ड नहीं।

तेरा प्यार ही मेरे जीवन में, सबसे ज्यादा है मूल्यवान।
तुम नहीं तो बस यह लगता है, जैसे मेरे खो गये प्राण।

25–01–10

माँ के प्रति

माँ तुम नहीं रही,
सुनकर एक दृश्य
धुँधला–सा
जीवन्त हो गया
आज मैं जहाँ खड़ा हूँ
शोर ही शोर
ह्दय
लगा रुक गया
समझ में नहीं आया
ऐसा लगा
जड़ हो गया

बचपन का देखा स्वप्न
साकार होने से पहले
बिखरा, इस तरह
चाह कर भी
कुछ न कर सका
सोचता हूँ तो
पिघलने लगता हूँ
अंदर धीरे–धीरे
कोई नहीं समझ सकेगा
मेरे अंदर की
हो रही
पीड़ा

माँ मुझे आशीष दो
सुखी रहो जो सदा कहती थी
जाने क्यों नहीं चाहता
मुझे आशीर्वाद दो,
लक्ष्य पा जाऊँ
तुम्हारे इस तरह जाने से
सुनकर आँसू नहीं बहे
रिक्त लोचन
अब मेरी वेदना
कौन समझेगा
अब तो और गहरायेगी

माँ बचपन में मैं तुम्हे माँ नहीं
मुन्नी कहता था
और अम्मा नानी को समझता था
समझ के साथ ही समझा था
तुम्हें माँ
सब कुछ खो देता तुम्हारे लिये
परन्तु आज तुम्हें ही खो दिया
मैं कहाँ हो पाया सफल

माँ मैं तुम्हें अंतिम बार देख न सका
यह कसक तो सदा रहेगी
और मुझे,
स्मृति करती रहेगी
मेरी कमी
माँ तुम मेरे लिये
अज्ञेय रही सदा
परन्तु अब जब तुम आत्म रूप हो
तो मुझे क्षमा कर देना
मेरी भूल चूक को
मन में नहीं रखना
माँ........

3–5–10

स्थान— विशाखापट्टनम
(आन्ध्र प्रदेश)

प्यार से भक्ति

कली जब प्यार की हृदय, में बन कर फूल खिलती है।
भाव विह्वल विचारों में, सुगन्ध अपनी बिखेरती है।

विचारों के फिर मंथन से, निकलता प्यार जब बाहर।
तो फिर न कुछ दिखता है, हृदय को प्यार से बढ़कर।

विचारों के फिर चिंतन में, जो बनती प्यार की सूरत।
भावोद्रेक हो हृदय उसको, पूजने लगता ज्यों मूरत।

प्यार और भक्ति में अंतर, बस बाहर ही दिखता है
रोशनी में भला अन्तर, कभी कोई कर पाता है,

किया अनुभूति हृदय ने, प्यार में भाव जो पाया।
डूबकर भक्ति सागर में, भेद उसने न कर पाया।

अपना ही अस्तित्व बिखरकर, प्यार में जैसे होता विलीन।
आत्म समर्पण भक्त भी करके, हो जाता प्रभु के आधीन।

पाकर के प्रियतम के दर्शन, दृग में भरती शीतलता।
वह आनन्द विपुल वैभव क्या, कहीं धरा पर मिल सकता।

जीवन को कृतकृत्य बना कर, कर देता है प्यार सफल।
भक्ति भी हृदय को कर निर्मल, भरती भाव यही हर पल।

अपनापन को बहा ले जाती, प्यार की ऐसी धारा है।
प्रिय के सुख दुःख और ताप सब, लगता वही हमारा है।

प्रियतमा के लिए प्रेमी का, अर्पित जब हो जाता जीवन।
प्यार भक्तिमय तब हो जाता, बन जाता तब जीवन पावन।

28–8–10

सत्य

एक ठूँठ को रँग कर
कुछ दिनों के बाद
कहा जाने लगा
यह ठूँठ अत्यन्त प्राचीन
आमुख रंग का
तब सब रंगों का पता नहीं था

धीरे–धीरे चलता रहा समय
और एक दिन लोगों ने
ठूँठ की पूजा शुरू कर दी
बाद में बन गये
जाने कितने नियम

आह एक दिन
कोई दूसरा वैसा ही ठूँठ
लेकिन रंग और था
दिखने लगा लोगों को
जो बहुत दूर से आया था

धीरे धीरे शुरू हो गयी
इस नये ठूँठ की पूजा
इसी तरह
दो, तीन, चार
नये नये रंग
नये नये प्रकार

ठूँठ हो गये तैयार
लोग बँट गये
अपने ही ठूँठ के रंग को सही समझ
दूसरे के ठूँठ को तोड़ने का
उपक्रम
आगे चलकर
जीवन का आदर्श बना

फिर शुरू हुआ संघर्ष
होने लगा रक्तपात
लहूलुहान होती गयी मानवता
सिसकती रही दिन रात
और फिर उसने देखा
एक ही ठूँठ में कई रंग

आज के वैज्ञानिक युग में
अब भी
मनुष्य का मनुष्य से प्यार
धर्म एवं जाति के तराजू से तोला
जाता है
आँखें बंद रखो
नहीं तो फोड़ दूँगा
धमकी दिया जाता है
सत्य जिसे जानना अब भी बाकी है
उसे अपने अपने ढंग से
कहा जाता है।

9–6–10

चित्र

पेंसिल से बनने वाले चित्र
रबड़ की सहायता से
छोटे या बड़े
घटायें या बढ़ायें
अपनी इच्छा अनुसार
मिटायें

परन्तु वे चित्र
जिनमें भर दिया जाता
अपना मनपसन्द रंग
नहीं है उनके मिटाने का ढंग
यदि रंग हों पक्के

जब हम हो जाते असहाय
करते करते उपाय
फिर रंगों को करते हैं बदरंग
पीले में लाल
लाल में काला
जो जैसे बदले
उसमें वैसा डाला
यदि नहीं रहा कोई चारा
तो सारा पृष्ठ ही
काला कर डाला–
चित्र चाहे पेन्सिल के हों
या पक्के रंग के हों
चाहे जिस ढंग के हों
अपनी इच्छा अनुसार
बनाते बिगाड़ते
बदरंग करते
क्या कभी आपने सोचा है
चित्र भी बोलते हैं

चित्र एक बार बनकर
बिगड़ते नहीं
मिटते हैं
ढहते हैं
पेन्सिल रबड़ ब्रुश से
वे यही कहते हैं।

12–6–10

बिसरी अपनी पीर

ओठों पर जब तैर गयी, एक महीन मुस्कान।
धवल दंत पंक्ति तले, उलझ गये मेरे प्रान।।

लगी मनोहर नासिका, अति सुघड़ दोऊ छिद्र।
परविहीन चाहत उड़न, होत न यदि नथ बद्ध।।

श्याम श्वेत नयन भरा, यौवन मद उमगात।
जबहिं दृष्टि मैं पर पड़ी, भयो सराबोर गात।।

विहंसत ही कपोल पर, आये उभर निशान।
अवलोकन वह योग्य छवि नहि होय सकत बखान।।

चेहरे पर अठखेलियाँ, आकर कर रहे केश।
अंग अंग दीप्तमान है, चकित देख कर भेष।।

वह चितवन वह बालपन सुन्दर मुख गम्भीर।
देखत हिय शीतल भयो, बिसरी अपनी पीर।।

27–6–10

जिन्दगी

जिन्दगी लिये एक प्रश्न यक्ष,
रह गयी खड़ी मेरे समक्ष।

पाकर जिसको मैं पा न सका,
जी कर भी जिसको जाना नहीं।
जब आँख खुली रोशनी मिली,
मैं उससे ही चुँधियाता रहा।
मैं कैसे अपनी बात कहूँ–
ज्ञेय स्वयं न मुझको अपना पक्ष।

मैं कैसे कहूँ छलावा है,
माया ममता सब केवल भ्रम।
पर गर्म टपकते ये आँसू,
इनका जो इनमें छिपा मर्म।
वह कैसे हो सकता धोखा,
अहसास भूख का जो प्रत्यक्ष।

मानव की रची हुई संस्कृति
टकराहट की चलती बयार
वह भी क्या कोई शिष्टाचार
हृदय जो कर दे तार तार।
अब तक तो मुझे लगा बस यह,
है बहुत दूर आदमी से सच।

बाहों में तुमको भरने की
हो सकी न आकांक्षा पूरी

मैं आग पीछ में पड़ा रहा
तू पिघल रही हिम खंड सदृश्य
चेहरे रिश्ते बदले हैं वर्ष।
मैं ओढ़े रहा अब भी प्रपंच।

निश्चित परिभाषा न कोई
दे सकी अभी जग की भाषा
तू सरल मगर इतनी है सघन
उलझन तेरी से न सका निकल
होता प्रमुदित उस दिन मेरा मन।
दिखती जब तुम मुझे परम स्वच्छ।

वरदान ताप अभिशाप लिये,
मँझधार में ज्यों कभी नाव फँसे
तू क्या है न मैं जान सका
कभी सार–सी है कभी भार लगे
एक–सी न कभी तेरी स्थिति,
निर्धारित होगा कैसे लक्ष्य।

जिस दिन तुम से मुलाकात हुई,
मेरे साथ घात प्रतिघात हुई।
लगे मूल्य अटपटे अरु बौने,
पर कहूँ तो मेरी कौन सुने।
अंदर ही अंदर सुलग सुलग,
बन गया राख का मेरा वृक्ष।
जिन्दगी लिये एक प्रश्न यक्ष,
रह गयी खड़ी मेरे समक्ष।

5–6–10

अगर पास तुम मेरे होती

अगर पास तुम मेरे होती, तो क्या मैं ऐसा होता।
खुली आँख से भी मैं दिन में, स्वप्न नहीं देखा करता।
स्वप्न नहीं देखा करता, बस उर में तुम्हें छुपा लेता।
यहाँ नहीं कहीं अन्य लोक में, तुमको ले विचरण करता।
तुम में ही समाहित होकर, निज अस्तित्व मिटा देता।
तुम चाहे जैसे भी रखती, हर स्थिति में रह लेता।

भाव सदा एक–सा नहीं रहता, मैं यह बात जानता हूँ।
लेकिन एक बात फिर भी मैं, दावे से कह सकता हूँ।
दावे से कह सकता हूँ, जब जब मैं होता घायल।
मन को धीरज देने में जब, हो जाता हूँ असफल।
ऐसे में इस रिक्त हृदय, उतर तभी तुम आती।
तुम ही निश्चित रख सकती, मेरी जीवन बाती।

अगर प्रेम एक पागलपन है, तो पागल रहने दो।
फर्क नहीं पड़ता कुछ मुझको, दुनिया को कहने दो।
दुनिया को कहने दो, करता उसकी मैं परवाह नहीं।
प्यार से बढ़कर जग में, कुछ है करता मैं विश्वास नही।
कोशिश से सब कुछ मिलता है, लेकिन मिलता प्यार नहीं।
संकुल की हृदय पुकार है, तुम से प्रिये कुछ और नहीं।

तुमको ही मैं खोज करता, गली भीड़ चौराहों पर।
तुम–सा कोई नहीं मगर, फिर भी भ्रम हो जाता अकसर।
भ्रम हो जाता अकसर, यह मेरी कभी नहीं मजबूरी।
काश मैं ऐसा इसलिए करता, रही जो तुम से दूरी।
यह दूरी पर घटेगी कैसे, समझ नहीं जब पाता।
यदा कदा ऐसी स्थिति में, उलझ मैं निश्चित जाता।

मिलो न तुम मैं जी सकता हूँ, अश्क नहीं बहने दूँगा।
चेहरे पर कोई मलाल या, शिकन नहीं दिखने दूँगा।
शिकन नहीं दिखने दूँगा, हर गम को पी जाऊँगा।
पर तुमको पा लिया, तो फिर मैं अलग न हो पाऊँगा।
तुमको खोने का भय, जब मुझ पर होता है भारी।
उस स्थिति सोचनीय, हो जाती बुद्धि हमारी। 25–4–10

कभी कभी ऐसा लगता, तुमको बाहों में लेकर।
जाता मैं दूसरी दुनिया में, इस धरती से उड़कर।
इस धरती से उड़कर, जहँ भय भूख प्यास न होती।
राग द्वेष का द्वन्द न होता, बस तुम ही तुम होती।
कैसा होता अगर प्रेम के, बीच स्वार्थ न आता।
तो मैं शायद नये लोक में, जाने से घबराता।

दुनिया में यदि प्यार न होता, तो दुनिया कैसी होती।
चाहे वह जैसे होती, पर इससे तो अच्छी होती।
इससे तो अच्छी होती, दिल पर तो लगती चोट नहीं।
कैसे भी हम जी लेते, खोजते किसी का ओट नहीं।
कभी किसी के लिए तड़पने, की होती न बीमारी।
कम हो जाती अफरा तफरी, घट जाती मारा मारी।

पूर्ण चाँद के सम्मुख तारेगण, मलीन हो जाते हैं।
स्वच्छ चाँदनी से बिखरी, धरित्री स्वर्णिम दिखलाती है।
धरत्री स्वर्णिम दिखलाती है, छवि अवर्णनीय अतुलनीय है।
ऐसे में क्या मनोभाव, रह सकता गोपनीय है।
सब स्मृतियाँ धँधुला जाती, जब तुम उनमें आती।
बस चकोर की चंदा जैसी, केवल तुम रह जाती।

गर्म हवायें छोड़ कर धरती, अपनी प्यास बताती।
और उन्हीं से अपना संदेशा, सागर को पहुँचाती ।
सागर को पहुँचाती जो, कृत कृत्य उसे करता है।
जब जब लगती प्यास, भेज बादल तब तब देता है।
सब कुछ पाकर आज तलक, न जाने क्यों मैं प्यासा।
जीता हूँ इसलिए कि तुमसे, लगा जो बैठा आशा।

काँटों में यदि फूल तो, फूलों में भी देखे काँटे हैं।
अकसर वे ज्यादा चुभते, जिनको हम अधिक चाहते हैं।
जिनको हम अधिक चाहते हैं, यदि वे ही हृदय दुखायें।
ऐसी स्थिति में भी हमसे, भूल न होने पाये।
संकुल की कामना प्यार, धरित्री पर सदा मुस्कराये।
कभी किसी भी प्राणी का दिल, नहीं टूटने पाये।

26–4–10

अगर तुम पास में होती

अगर तुम पास में होती, बात कुछ और ही होती।
सदा ही ग्रीष्म न रहता, कभी बरसात भी होती। अगर तुम...

न जाने कब ही बुझ जाती, ये जलती दीप की बाती।
अगर शीशे के बाहर ये, निकल एक पल गयी होती। अगर तुम...

तैरते तैरते थक कर, समा जाता इस सागर में।
अगर तेरे याद की टापू, मुझे मिल न गयी होती। अगर तुम...

पड़ा थक कर के बिस्तर पर, नींद कोसों दिखाती है।
अगर तुम सामने होती, कभी यह देख न पाती। अगर तुम...

सोचता हूँ यही अकसर, ये कैसा है मेरा जीवन।
अगर तुम साथ में होती, तो फिर क्या बात ये होती। अगर तुम ....

कभी हृदय को लगता है, कि जैसे पास हो बैठी।
अगर तुम को पकड़ लेता, तो फिर क्या दूर तुम होती। अगर तुम ....

बुझी सी कामनाएँ हैं, न जाने क्या मेरा होता।
अगर तुम्हें भूलने की भूल, मुझसे हो गयी होती। अगर तुम ...

छिपा तुमसे नहीं सकता, मैं अपनी एक भी गलती।
अगर तुम चाहती मुझको, तो क्या नहीं माफ कर सकती। अगर तुम..

तुम इतनी सुंदर कोमल हो, जिसे मैं लिख नहीं सकता।
अगर तुम मिल गयी होती, तो कुछ भी बात न होती। अगर तुम ...

27–9–10

वह दिन आयेगा

दहेज एक अभिशाप है
समाज में कोढ़ है पाप है
अनाचार बढ़ने वाला
मानवता पर दाग है
लोगों से सुना जाता
किताबों में पढ़ा जाता
कानून बनाया जाता
लेकिन खुले आम दहेज लिया जाता

दहेज की कहानी
बहुत है पुरानी
मुझे नहीं दोहरानी
आप सब को पता है
जब तक हम आप रहेंगे
दहेज लेते रहेंगे
और अपनी संतान को
सम्पन्नता का यह मंत्र देकर
मरेंगे होकर आत्मविभोर
अन्यथा कौन करेगा
हमारा तर्पण
गया में
पिंडदान देकर
दहेज से नहीं है मुझे परहेज
समाज में रहना है
तो दहेज लेना पड़ेगा
लड़की देखने की परम्परा
समाज में
पता नहीं कहाँ से
उग आयी
कुकुरमुत्ते की तरह

लोग लड़की देखते हैं
स्यात्
मर गया विश्वास
परन्तु पहले ऐसा नहीं था।
ठग तो पहले भी थे–
पर वे अपने गाँव में
शरीफ बनते थे।

कुछ भी हो,
प्रश्न तो है
चंद लमहों में
क्या देखते आप लड़की में
केवल
देह
लड़की देखने की हुई जो शुरुआत
इसमें मुझे दिख रही है– एक अच्छी बात
धीरे–धीरे होगा परितर्वन
जब आज का युवा लड़की देखकर नहीं
उसके आचरण को समझकर
करेगा वरण
और युवती भी
उसे ही डालेगी वरमाला
जिसे वह चाहेगी
परख कर

वह दिन अवश्य आयेगा
जब युवा
विवाह के मामले में स्वतंत्र होगा
समाज फिर चिल्लायेगा
नैतिकता का नगाड़ा बजायेगा
परन्तु उस समय
दहेज
जिन्दा भले रहे
पर अपाहिज हो जायेगा
वह दिन आयेगा 17–6–10

वापस हो गया प्राइज

धूर्त एवं भ्रष्ट मंत्रालय के तत्त्वावधान में
आयोजित हो रही सभा
जन समुदाय था खचा–खच भरा
सरसों भी न गिरे नीचे
लोग भरे थे ठसाठस
रेल का चालू डिब्बा बस
हवा तक गुम थी
पर किसे इसकी फिकर थी
लोग खुसर फुसर कर रहे थे
न जाने क्या क्या कह रहे थे
मैं मंच से खड़ा था दूर
देखकर ऐसी भीड़
हो गया था मजबूर
समाप्त हुआ इंतजार
गूँजने लगी जय जयकार
मंत्री जी मंच पर पधारे
लोग अभी तक लगा रहे थे नारे

शंख को बजाया
कार्यक्रम को आगे बढ़ाया
औपचारिकताएँ जब हुईं सारी
श्री गणेशाय नमः कह हुआ कार्यक्रम जारी
परन्तु मुश्किल था
देश के आये हुए
तमाम विभागों के
मंत्रालयों के
महानुभावों की आये बारी
इसलिए कार्यक्रम को संक्षिप्त किया

उद्घोषक ने घोषणा की
देश के आये हुए तमाम महानुभाव
हमें आप सबके विचार
करना होगा आत्मसात्
हमने आप सबके सुझावों का
विशेषज्ञों से अध्ययन कराया
आप सभी को भविष्यद्रष्टा पाया
इसलिए हमने आप सब के सुझाव
केन्द्र एवं राज्य सरकार के हर विभागों में
निजी क्षेत्रों में भी
आरक्षण की तरह
लागू करने का फैसला किया
हमने अपनी रिपोर्ट पी.एम. को दे दिया
यह रही उसकी प्रतिलिपि
दिखाया
फिर मीडिया को दे दिखा
फिर आयोजक ने कहा
मंत्री महोदय आप यहाँ पर आयें
दो शब्द कहकर देश की जनता का
उत्साह बढ़ाये
मंत्री जी आकर के मुस्कराये
लोगों ने फिर नारे लगाये

मेरे देश की माताओं भाइयों बहनों
धन्यवाद आप सबका
जो यहाँ तक आये
आज हमारे देश के सभी विभागों में
छिड़ा सघर्ष है
कौन सबसे से ज्यादा भ्रष्ट है
सभी में होड़ है
हमारा मंत्रालय नहीं निकाल पाया
निचोड़ है
कौन सबसे श्रेष्ठ है
मुझे इस बात का बेहद दुःख है
हम किसी को फर्स्ट प्राइज नहीं दे पा रहें
इसे हम अपने साथ लेकर जा रहे हैं

अंत में मुझे आप सब से सिर्फ इतना कहना
जब सभी भ्रष्ट होंगे तभी भ्रष्टाचार खत्म होगा
इसलिए यह जरूरी नहीं मजबूरी है
मुझे आप सबसे आशा है
देश में जो छायी घोर निराशा है
उसे बेईमानी से ही खत्म किया जा सकता है
हमने आप सबके सुझावों से,
यही पाया निचोड़
सत्य ईमानदारी खुद्दारी इन सबको छोड़
आप चाहे जो भी काम करें
मक्कारी एवं धोखेबाजी से करें
मुझे है पूरा यकीन
जब पूरे देश से ईमानदारी उठ जायेगी
उस दिन हमारे देश की ताकत
दो गुनी हो जायेगी

मैं सभा से घर आया उदास
पत्नी आयी मेरे पास
कवि सम्मेलन में तो गये नहीं थे
फिर कहाँ थे इतनी रात
मुझे बताओ सच्ची बात
मैंने बहुत कोशिश की
पर झूठ नहीं बोल पाया
आह रे मेरा दुर्भाग्य,
धूर्त एवं भ्रष्ट मंत्रालय का
एक भी उपदेश आत्मसात् नहीं कर पाया
कोसता रहा अपने को
सो नहीं पाया उस रात

16–6–10

वहाँ

असंख्य मोतियों में
कोई एक
सबसे मूल्यवान
जैसे
मधुमक्खियों के छत्ते में
रानी
सुना है कहानी

फूलों में भी
कौन सबसे सुंदर
नहीं हो सकता
एक मत
क्योंकि
फूल को दृष्टि देखती है
दृष्टि सबकी
होती
अलग–अलग

सत्य एक है
परिभाषित किया गया
तरह तरह
और इस तरह में
उलझा

तलाश रहा हूँ
उस मोती को
जो सबसे श्रेष्ठ
मुझे आश्चर्य होता है
सुंदरता में
क्या खोज रहे हैं नेत्र
जिसे देखना चाहते बार – बार
और हर बार
नवीन
एक दो अंश का अंतर लिये
बनता है कोण

मैं मानता हूँ
देह देखता
क्या करूँ
देह में ही बसती है
सुंदरता
काश मैं देख पाता
वहाँ
जहाँ सुंदरता है
देह नहीं।

8–10–10

सच

रिश्तों के सुंदर शब्दों का अर्थ हुआ निःसार
सच जब तेरे सामने होगा करेगा किससे प्यार।
नशा टूट जाता मगर रहता बेपरवाह,
बदल आज तक न सका चलता रहा उस राह।

मेरे भावुक हृदय में पनपे जो शुद्ध विचार,
चोट लगी जब हृदय में कर उठे हाहाकार।
आज लगा इस जगत में व्यर्थ खोजना प्यार।
टिक सकते नहीं जगत के बनते जो आधार।

भूलों से भी सीख ले नहिं कर सका सुधार,
सोच रहा इस जगत से हो कैसे उद्धार।
बहुत सरल सीधी रही इस जहान की नीति,
बिना स्वार्थ करता नहीं कोई किसी से प्रीति।

फिर भी जाता उलझ मैं झूठी लेकर आश,
टपकी ओंस की बूँद से मिटा रहा हूँ प्यास।
धोखा खाती दृष्टि यह फिर भी वही दृष्टिकोण,
प्रश्न यही इस दृष्टि को कैसे दूँ अब मोड़।

अपने सुख में सब मगन दिखता यह संसार,
कोई समझ सकता नहीं रहे जो प्राण पुकार।
निःस्वार्थ निर्विकार हो सुनने को दो बोल,
कर्ण तरस गये जीवन भर करती सच्ची कौल।

कोई कर सकता नहीं कभी किसी से प्यार,
परम सत्य इस जगत का करना पड़ा स्वीकार।
अनिर्वचनीय इस जगत में तू ही दे आधार,
जिस सहारे से पा सकूँ केवल तेरा प्यार।

25–9–10

मेरा दृष्टिकोण

तुम्हारे मन में मेरे प्रति नया जो सोच आया है,
सही या गलत का निर्णय नहीं मुझसे हो पाया है।
मैं उनमें से नहीं जो मानते अपनी नहीं गलती,
एक गिनती से बढ़कर ही सदा बनती नयी गिनती।

ये सच है कि मैं लिखते वक्त चश्मा को लगता हूँ
तुम्हारी सूक्ष्म दृष्टि–सी न अपनी दृष्टि पाता हूँ।
जिसे तुम मूल्य कह करके रही कर जिसका मूल्यांकन,
देह वह ही सदा बनती रही मेरे खोज का साधन।

जगत में आज तक होती विचारों की लड़ाई है।
हार या जीत दोनों में निराशा मैंने पाई है।
मुझे बस इतना कहना यदि चश्मा तुम लगाओगी।
जहाँ तक देख मैं पाया वहीं तक देख पाओगी।

मेरी त्रुटि दोहराना ही अगर समझती तुम हो दुरुस्त
इससे तुम्हें क्या मिल पायेगा सोचना मिले अगर फुरसत।
मैं तो कभी नहीं मानूँगा तुममें मुझमें है अंतर।
तेरी खोज और मेरी खोज क्या मिलती नहीं एक बिन्दु पर।

दुनिया के कुछ नियम हैं ऐसे सही गलत के बिना चलेंगे
कितना भी प्रयास करे कोई फिर भी कभी नहीं बदलेंगे।
अच्छा है इस टकराहट में अपनी ऊर्जा हम न गवायें
मानव मन का मिटे अँधेरा दुनिया को वह ज्ञान सिखायें।

25–9–10

वे न मिले

वे न मिले उनके लिए,
रहे तरसते नैन।
कहना था न कह सके,
पिघल गये ही बैन।

यदि वे रहते पास में,
रहता मैं न उदास।
जाने ही कब बुझ गयी,
होती मेरी प्यास।

होती यदि यह प्यास न,
क्या होता अनजान।
मिट जाती होती कहाँ,
तब मेरी पहचान।

तुमको ही मैं खोजता,
भटक रहा जहान।
तुम ही मुझको जानती,
मन यह रहा है मान।

12–1–11

बिखरी माला टूट कर

बिखरी माला टूट कर,
दर्शक बन रहा देख।
जहाँ न बस अपना चले,
वहाँ भाग्य का रेख।

खेला था जिस तरु तले,
असभ्य ढहा कर शोर।
ऐसी हलचल कर गया,
ढाढ़स ही गया तोर।

अब किसको अपना कहूँ,
पकड़ू किसका हाथ।
दिखलाता कोई नहीं,
जो करें मुझें सनाथ।

पीछे की जो रेख है,
उसको रहा हूँ देख।
जीवन विस्मय से भरा,
यह बिधना का लेख।

12–2–11

दिशा

निकला जब चाँद बादलों से, यूँ लगा बहुत हर्षाया है।
यह आँख मिचौली वाला खेल, बिलकुल ही रास न आया है।

वह चाह रहा जी भर देखूँ, वर्षा से भीगी हरियाली।
बह रही वायु अच्छा अवसर, पीलूँ जो भरी मधु से प्याली।

लेकिन ये अवारा बादल, कब प्यास बुझाने देते हैं।
मिलता है चाँद को ज्यों अवसर, तैसे उसको ढक देते हैं।

सावन की पूर्णमासी की रात, बादल में छुप करके बीती।
वर्षों की चाह न हुई पूर्ण, कुछ भी न कर पाया मन की।

बादल की इन करतूतों से, किंचित न चाँद होता विचलित।
छू लिया उन्हें जितने ही पल, कर देते वही दिशा निश्चित।

27–07–10

दुनियादारी

मैं चाह करके तुमसे फिर भी न भाग पाया।
करता प्रयास लेकिन परिणाम शून्य आया।
मैं जानता हूँ तुमसे यों नेह को बढ़ना
परिणाम इसका अंतिम एक रोज है पछताना।

ऐसा न होता यदि तो होता कभी न मंथन।
फिर सत्य का जगत में होता कभी न चिंतन।
संसार के ये रिश्ते दे देते मन को राहत।
तो बोधि भक्ति प्रज्ञा वृत्ति की क्या जरूरत।

दुनिया के सारे दर्शन में प्यार रहा ऊपर।
निर्विवाद लेकिन वह भी कहना बहुत है दुष्कर।
निर्विवाद न सही पर निश्चित फैलाव इसका।
हर प्रश्न का पर उत्तर फिर भी न इसके बस का।

प्रश्नों के झंझावातों से जब हो जाता व्याकुल।
तब मैं पास तुम्हारे आता होकर के ही आकुल।
सच्चाई से टकराती है जब भी बुद्धि हमारी।
होता है अफसोस न अब तक समझा दुनियादारी।

अपनी बात

कई बार विश्वास को दिया हमारे तोड़।
फिर भी मैं जाता उलझ मोह बड़ा बेजोड़।।

दुःख तो है इस बात का जो देते हैं घात।
फिर भी कर पाता नहीं मैं उनसे प्रतिघात।।

स्वार्थ के संसार में किसे कहेंगे आप।
कभी–कभी लगता मुझे जीवन जैसे शाप।।

सच कहते संसार में कहीं नहीं है सार।
स्वार्थसिद्धि की पूर्ति का स्यात् शब्द है प्यार।।

कोई भी रिश्ता नहीं जहाँ प्यार निःस्वार्थ।
मंत्र अर्थ की प्राप्ति हो आज वही परमार्थ।।

अपने–अपने स्वप्न को करते सब साकार।
लिये ललक सब बढ़ रहे छोड़ आचार विचार।।

किसको प्यारा कौन है बहुत कठिन यह मर्म।
कब जायें रिश्ते बदल कहाँ बची अब शर्म।।

दुःख का कारण कहीं तक मन के स्वयं विचार।
बिन बदले नहीं चैन है कोटि करें उपचार।।

उमड़ घुमड़ कर बेदना मचा रही उत्पात।
अब लगता नहीं मुझे कभी कटेगी रात।।

अक्सर अपने आप से जब में किया सवाल।
बाहर जो अपने मेरे करने लगे बवाल।।

अतःकरण ने दे दिया तत्क्षण मुझे जवाब।
अब तो अपने आपको बदलें स्वयं जनाब।

27–8–10

पीहर

पीहर जाते समय नारी का मुखमंडल
खिल जाता है जैसे कमल
इतनी प्रफुल्लित तो वह उस दिन भी नहीं होती है
जिस दिन
पति से पहली मुलाकात होती है
दरअसल आज पति की
परिभाषा बदली है
नारी हर क्षेत्र में आगे निकली है
मुझे लगता है
कहीं कहीं वह पुरुष से आगे है
मैं तो आज तक
सदैव
भागता रहा नारी के पीछे

पीहर से नारी का होता ऐसा रिश्ता है
जैसे किसी नागरिक का राजधानी से होता है
पीहर है नारी की राजधानी
नहीं भूल सकती वह वहाँ की कहानी
वहाँ पर बीता उसका बचपन
जिसे नहीं भूल सकता कभी मन
इसलिये यह कविता महज कल्पना न मानें
नारी के पीहर प्रेम को पहचानें
नारी से कभी मत करें सवाल
नहीं बतायेगी वह पीहर का हाल
भाई बहिन माँ बाप सभी ध्रुव तारे हैं
पीहर के कण–कण लगते उसे प्यारे हैं।

मैंने एक अजीब सपना देखा
मैं मर गया
श्रीमती जी पीहर में हैं
मेरा बेटा टेलीफोन मिलाता है
मेरी आत्मा को
उनका वार्तालाप सुनायी पड़ता है
मम्मी बहुत गड़बड़ हो गया
आप जल्दी चली आयें
यहाँ सब कुछ खत्म हो गया
मम्मी की खनकती हँसी गूँजती है
बेटे को डाँटती हैं
बेटा कुछ बोले
इससे पहले
टेलीफोन रख देती हैं

बेटा जब दोबारा नम्बर मिलाता है
तो श्रीमती जी आँखें नचाती हैं
मोबाइल का स्वीच ऑफ कर देती हैं
अपनी माता जी से इस तरह कहती हैं
अम्मा चार दिन के लिए आयी हूँ
यह बात उनको नहीं भायी है
बेटे से कहकर करा रहे फोन
कहेंगे जल्दी चली आओ
मैं हूँ बीमार
झूठ बोलेंगे बार–बार
इसलिये अम्मा मेरी मानें
स्वीच खोल दें।

इस बार घंटी बजे तो आप उठायें
मुझे तेज बुखार है
बेटे को बतायें

बेटा फिर टेलीफोन मिलाता है
सास को मेरे मरने का
हाल बताता है
सुनकर सास जी चौंकती हैं
बेटी को बुलाकर कहती हैं
तुम्हें जाना होगी बेटी
दामाद जी दामाद जी.......

श्रीमती तैश में आती हैं
दामाद जी दामाद जी आप क्यों चिल्लाती हैं
श्रीमती जी की सुनकर पुकार
दौड़ कर आता है सार
इकट्ठा हो जाता है पूरा परिवार
सासजी बेटे को बुलाती हैं
धीरे–धीरे उसके कान में
मेरे मरने का हाल बताती हैं

दीदी चलो मैं तुम्हें घर छोड़ दूँ
जीजा की तबियत बहुत खराब है
श्रीमती जी मुँह बनाती हैं
टेलीफोन उठाती हैं
घर का नम्बर लगाती हैं
बेटा क्यों कर रहे नौटंकी हो

क्या तुम्हारे पापा की तबियत सचमुच खराब है
क्या यह सच्ची बात है
बेटा रोने लगता है
फिर कहता है
आप जल्दी चली आयें
मम्मी पापा अब इस दुनिया में नहीं रहे
क्या
श्रीमती जी चौंकती हैं
फिर बेटे से कहती हैं
लेकिन बेटा
मेरे आने से क्या तुम्हारे पापा
जिंदा हो जायेंगे
श्रीमती जी के सुनकर शब्द
मेरा सर चकराता है
स्वप्न टूट जाता है।

29–8–10

ऐसी थी मेरी प्यारी बिटिया

महका दी मेरे घर की बगिया, ऐसी थी मेरी प्यारी बिटिया।
जब भी मन मेरा घबराता, उसकी यादों में खो जाता।
याद मुझे जिस दिन वह आयी, गयी न थी घर खुशी मनायी।
आया जब मैं प्रिया के पास, लगी मुझे वह भी थी उदास।

दुनिया का यह लगा जो मेला, अक़सर मैं रहता हूँ अकेला।
है अजीब मेरी विचारधारा, कोई न देता जिसको सहारा।
करता आया मैं मनमानी, कभी न सुनता कोई कहानी ।
मैंने प्रिया का चूमा माथा, लगी सुनाने वह मुझे गाथा ।

मैं था कहाँ मानने वाला, बोली पड़ा क्या तुम से पाला।
कुछ तो धर्म कर्म अपनाओ, हाथ जोड़ रही बाहर जाओ।
हाथ पकड़ कर कहा मैं उसका, बाहर जाना नहीं मेरे बस का।
बेटी का बिना किये दुलार, नहीं जाऊँगा बाहर यार।

हार मान ली आखिर उसने, दे बेटी मुझसे लगी कहने।
पंडित की भविष्यवाणी झूठी, बेटे की जगह आयी बेटी।
बेटी को देखा जी भर के, फिर बोला पत्नी से हँस के।
बेटा बेटी में यह अंतर, उचित नहीं है मेरे मित्रवर।

बेटा बेटी का यह भेद, मुझको देता केवल खेद।
इसीलिये न मैंने उसकी मानी, बढ़ने लगी मेरी बिटिया रानी।
मेरी गोदी में आ बैठती, खूब मचलती और कूदती।
मेरे कंधों पर चढ़ जाती, बाल पकड़ कर नीचे आती।

कान पकड़ कर मेरा घुमाती, तरह–तरह के खेल खिलाती।
कभी बनाती मुझको हाथी, पापा हैं मेरे अच्छे साथी।
मेरे थाली में आ खाती, मम्मी का न कहा मानती।
शाम को मेरे साथ खेलती, मेरे सीने पर सो जाती।

बेटी है या मेरा खिलौना, यही सोचता था मन अपना।
उसके बचपन की वह क्रीड़ा, हर लेती थी मेरी पीड़ा ।
समय चला गया जैसे झोंका, खो गया जो मुझे मिला था मौका।
बेटी हो गयी मेरी सयानी, करती मेरे जैसे मनमानी।

खिन्न मुझे जब कभी देखती, कई तरह के प्रश्न पूछती।
जब तक न पाती समाधान, नहीं छोड़ती थी मैदान।
मम्मी की भी जिम्मेदारी, पूरी करती थी बेचारी।
घर की मेरे बन गयी मुखिया, सब के मन को भा गयी गुड़िया।

शाम को मेरे पास में आती, कुछ भी कहूँ न एक मानती।
मेरे सिर में तेल लगाती, भाषण दे मुझको समझाती।
रात को जब वह खाना खाती, माँ बचपन की याद दिलाती।
सुन करके केवल मुस्कराती, शायद बचपन में खो जाती ।

कभी न करती कोई शिकायत, जानती थी करना किफायत।
करती तो बस ऐसी शरारत, जिसमें मिलती मन को राहत।
पढ़–लिख कर बनी आधुनिक बाला, पर हृदय था बहुत निराला।
घर में सबके मन को भाती, कभी काम से जी न चुराती।

बैठो बिटिया मम्मी कहती, पर मम्मी की कभी न सुनती।
अपने घर जाओगी बेटी, तब भी रहूँगी क्या मैं लेटी।

मम्मी की सुनकर ये बातें, आँखों में आँसू भर जाते।
तब मैं क्या देखूँगी मम्मी, आज से क्या हो जाऊँ निकम्मी।

हुई बिदाई जिस दिन उसकी, कह सकता नहीं पीड़ा मन की।
बहे थे आँसू उस दिन जितने, अभी तलक न सूखे उतने।
सब कुछ पर लगता मुझे ऐसा, उसके बिना सूना घर जैसा।
मेरे घर की भी उजियारी, थी बेटी वह इतनी प्यारी।

तन या मन जब भी मेरा दुखता, मुँह से बेटी शब्द निकलता।
इतनी सरल और भी निश्छल, भूल न पाता उसे एक पल ।
दुनिया में जितने भी रिश्ते, बेटी से बड़े नहीं हो सकतें।
सब रिश्तों में सबसे बढ़िया, मुझे लगी बस केवल बिटिया।

करता याद रहेगा यह मन, जब तक रहेगा मेरा जीवन।
सब स्मृति में सबसे सुन्दर, बेटी–सा न कुछ हिय अन्दर।

10–10–10

शब्द

जीवन तो बस केवल रफ है, कलम और कागज ही सच है।

जीवन में होता परिवर्तन, समय कटता रहता पल पल।
कभी विहँसता कभी तड़पता, चलते चलते कभी ठहरता।

कलम और कागज जो लिखते, शब्द अमर होकर के रहते।
अपना अर्थ सदा वे कहते, मलिन वक्त से कभी न होते।

जीवन तो बहता रहता है, नया रूप धरता रहता है।
जीवन का यह नियम पुराना, एक दिन मिट्टी में मिल जाना।

कलम और कागज गलते हैं, लिखे शब्द फिर भी रहते हैं।
भूत भविष्य वर्तमान ये तीनों, शब्दों के अंदर बसते हैं।

जीवन है एक भूल भुलैया, अगर पार करना है नैया।
तो करिये साहित्य साधना, इस बढ़कर नहीं आराधना।

जीवन को मत रफ होने दो, उसको भी कुछ कर लेने दो।
जो करके फिर न पछतायें, कर्म बस ऐसा करते जायें।

4.7.2010

बसन्त

ऐसी क्या बयार चली पोर पोर टूटन लागे,
द्वार पर खड़ी हो ले रही अँगड़ाई है।
नयन को झुकाय रही केश को बिखेरे हुए,
ऐसे लगे मानो रात नींद नहीं आयी है।
सिर से जो वस्त्र गिरा तापर न ध्यान दिया,
लेकर किवाड़ ओट ओंठ को चबाती है।
एक पैर पर दे जोर ले रही है लम्बी साँस,
देखती न आस–पास लगती ज्यों बोराई है।
अंग अंग में अनंग भर रहा जब अपना रंग,
विरह की तब वेदना फिर सही कहाँ जाती है।
भूल कर लाज शर्म होकर के उच्छृंखल प्रकृति,
देती खुला आमंत्रण जब ऋतु बसंत आती है।

चाहे तुम लपेटो साड़ी चाहे पहनो पैन्ट शर्ट,
या कि सलवार शूट चाहे कोई वेश हो।
अपना प्रदेश या कि देश या विदेश कोई,
कोई भी हो भाषा किन्तु भाव में तुम एक हो।
पृथ्वी का कोई छोर चाहे उसका रंग और,
किन्तु मकरंद भर बाहर तुम्हें लाती हो।
वस्तु भूषणों से करके श्रृंगार नित,
जीवन के ऋतु में बसन्त जैसे आती हो। 15–01–10

सब दिग दिगन्त में दिखाने लग गया बसन्त,
सब हो रहे हैं मस्त पर कुछ हो गये चिन्तित।
ऐसी बयार चल रही जिसमें सुबास है,
जो आदमी को दे रही एक नयी आश है।
होना निराश न कभी जीवन में तुम कभी,
हर जिन्दगी में एक दिन आता बसन्त भी।

आपस में खड़ी कर रही थी कोई ठिठोली,
सुन करके उसकी बात कोई दूसरी बोली।
क्या कह रही बेशर्म तुझे आती न लाज है,
यह भी क्या कोई मुझे बताने की बात है।
वह देख उधर बैठा एक गौरैया का जोड़ा
चल हट यहाँ से बन रही क्यों इसमें तू रोड़ा।

हर तरफ नयापन लिये प्रकृति सुहानी
लहराती नयी फसल सरोवर में निर्मल पानी।
वृक्षों में नये फूल फल पत्ते भी आ गये,
पर देश से जैसे कोई घर अपने आ गये।
हर तरफ नये रंग में धरती है अब सजी,
यह है बसन्त कीजिए जो आपकी मर्जी

सरसों के पीले फूल लहराते बयार से,
जैसे कोई तन ढक लिया हो पीले वस्तु से।
वह पक्षियों की चहचहाहट ऐसी थी घड़ी,
लगता कि जैसे बज रही हो किसी की चूड़ी।
सूरज हुआ है गर्म पर पे ठंडी हवायें,
ऐसे लगे जैसे छुआ जिसे आप भी चाहें।

मदहोश होने को हुआ है आज मन मेरा,
जाने किसी ने डाल दिया हृदय में डेरा।
मुझको तो सिर्फ अब केवल उसकी तलाश है,
वह ही मिटा सकती कि जो अब मेरी प्यास है।
ऋतुराज है दिल से निकाल रंज दीजिये।
मधुकर की तरह आप भी रस पान कीजिये।

आया बसन्त लेकर अपनी छटा निराली,
प्रकृति मनाने लगी है मानो दिवाली।

हर तरफ नये फूल फल छायी है हरियाली,
वायु में घुल कर बह रही है पूरब की लाली,
पौधे हों या वृक्ष सबको छू रही हवा,
उल्लास नया जोश तन में भर रही हवा।

आया बसन्त हो गया निर्मल आकाश है,
मन हो रहा प्रफुल्लित न भूख प्यास है।
बिखरी छटा जो भू पर वह देखने लायक,
आमों से कैसे तोड़ रहे अमियाँ ये बालक।
बैरों के काँटे से उलझ उसकी गयी सारी,
वह खिलखिला हँस पड़ी वह दे रही गारी।

देखो उधर जिधर जहाँ तक जायेगी नजर,
हर तरफ एक नयेपन की उठती है लहर।
लगने लगी है धूप लगे छाया सुहानी,
दिल में भी मचलने लगी कुछ यादें पुरानी।
आम्रों की मंजरी से निकलती है जो महक,
ठहरो वहाँ न जाओ नहीं जाओगे बहक।

सज धज सँवर कर धरती लेने लगी अंगड़ाई,
ऐसे रही शर्मा के ज्यों ससुराल में आई।
सूरज से न देखी गयी यह अल्हड़ जवानी,
भर करके क्रोध करने लगा अपनी मनमानी।
अपनी किरण की शक्ति को एक दम बढ़ा दिया,
पृथ्वी की बुझी प्यास को फिर से जगा दिया।

कोयल रही है कूक बैठी आम की डाली,
लेकर गिलहरी भाग रही गेहूँ की बाली।
फूलों के आस पास आकर गा रहे मधुकर,
वातावरण में घुल रहा संगीत मनोहर।

उड़ती हुई मधुमक्खियाँ करती पराग पान,
इस तृप्ति से प्रकृति करती है नया निर्माण।

प्रकृति ने जब हर तरफ बिखरा दिया उल्लास,
तो ऐसे समय में कभी न आप हों उदास।
बेकार कल की बातें अब सोचें नहीं कल की,
बस आज ही पूरी करें जो चाह हो दिल की।
ऋतुराज है बेकार तुम करती हो अब हया,
मेरे लिये दिल में तेरे क्या है नहीं दया।

पक्षी हुए नये नीड़ के निर्माण में अब व्यस्त,
आदमी वह है जो न हो मुश्किलों से पस्त।
करता नया सृजन नयापन नया सब नया,
बस इसलिये बसन्त तू ऋतुराज बन गया
ऋतुराज है फिर से नये प्रयास कीजिए,
पिछली विफलताओं को बिसार दीजिए।

ऋतुराज के आगोश में सिमटी जब यह धरती,
वहाँ भी खिल उठे फूल जो रहती पड़ी परती।
पलाश में दिखते हैं मानो आग के हैं फूल,
मधूक ने बिखरा दिये हैं फूल अपने धूल।
मटर की कलियाँ चने के पप्टे और उनके फूल,
देखा समझ में आ गया सौन्दर्य का तब मूल।

विभोर होती जिन्दगी जब तक उसमें नव आश है,
आश की ही तरह जरूरी जीवन में परिहास है।
जो किसी का दिल दुखाये सत्य वह मत बोलिये,
नम्रता सद्गुणों की जननी अमल इस पर कीजिये।
दूसरे के व्यंग को मधु ही समझ मधुमास है
इस तरह की जिन्दगी में रास ही बस रास है।

❑❑❑

महक

होती है आषाढ़ में ज्यों पहली बरसात,
वैसे आकर तुम मेरे जगा दी उर में आश।
जगा दी उर में आश अन्यथा मैं तो दूर खड़ा था,
रिश्तों से रिसने वाले नासूर का मुझे पता था।
वर्षा की भीगी मिट्टी की मोहक बड़ी महक है,
मिटा ताप ग्रीष्म का देती भरती नयी ललक है।

जब शरीर को छूने लगती है आषाढ़ पुरवाई,
मन में दबी हुई भावनाएँ लेती हैं अंगड़ाई।
लेती है अंगड़ाई ऐसे में तुम सम्मुख आओ,
बादल का कोई टुकड़ा–सा सूरज पर छा जाओ।
जरा देर ही सही मगर अब धूप का ताप नहीं है,
तुम पर जब तक नजर मेरी जिन्दगी का सार वही है।

नहीं ठहरती कहीं जिन्दगी चाहे कुछ हो जाये,
बिना तुम्हारे भी मेरा जीवन क्या जीवन कहलाये।
क्या जीवन कहलाये जो दिखता बस मगर धुआँ है।
कोई नहीं समझ सकता जो मेरा हाल हुआ है।
कुछ भी निकले अर्थ मगर मैं कहता हूँ निज मन की,
तुम्हें देखने की उत्कण्ठा सदा रही इस जन की।

अधिक वृष्टि तब मेड़ तोड़कर जाता पानी बाहर,
फसल लगाने हेतु किसान,रोकना चाहता अन्दर।
रोकना चाहता अन्दर, उसका संघर्ष देखने लायक
बिखर रहे यौवन को तुम मत, यों बाँधो ज्यों कृषक।
इस आषाढ़ की पुरवाई में, निश्चित घुल जायेगा,
कर लो कितना यत्न, महक यह संकुल तक आयेगा।

6.4.2010

कब आओगी

करता आया आज तक जिसकी रहा तलाश,
तुम्हें देख ऐसा लगा हो गयी पूरी आश।
हो गयी पूरी आश प्रश्न अब कैसे तुमको पाऊँ,
करता जितना यत्न उलझता उतना नित नित जाऊँ।
तुम चाहो तो मिट सकता है छाया छोर अँधेरा,
अपनी रश्मि बिखेर मुझे दे सकती नया सबेरा।

जेठ दुपहरी की तपिस सहा यही आधार,
आने वाला आषाढ़ है बरसेगा मूसलाधार।
बरसेगा मूसलाधार प्यास धरती की मिट जायेगी,
हरी चुनरिया ओढ़ सुहागिन–सी फिर दिखलायेगी।
झुलस रहा है हृदय भी मेरा रहते रहते ताप,
तुम चाहो तो मिट सकता है जीवन का मेरे शाप।

तुम–सा कोई और दूसरा नहीं मिलेगा सुन्दर,
तुम जैसे बाहर दिखती हो वैसे ही हो अन्दर ।
वैसे ही हो अन्दर करुणा ममता दया की आगर–,
तेरे रूप की उपमा देना ज्यों गागर में सागर।
मेरे मानस पर छाया रहे तेरा रूप सलोना,
अगर भूल मुझसे हो जाये तो भी खफा न होना।

व्यथा दूसरे की सुनते हैं लोग बड़े ही चाव,
सचमुच क्या अच्छा लगता है देख किसी का घाव।
देख किसी का घाव दर्द के उसकी तह में जाना,
बहुत कठिन हो गया आज है कौन पराया अपना।
ऐसे में मैं अपनी दिल की दिल में रहा दबाये,
कब आओगी पास कि तुमको अपनी व्यथा सुनायें।

14–4–10

तेरी स्मृति

अक्सर लगती हृदय पर जब भी मेरे चोट,
सँभाल न पाता स्वयं को तब जाता हूँ लोट।
तब जाता हूँ लोट भावनाएँ होती लथपथ हैं,
ऐसे में धुँधला–सा देखने लगता अपना पथ है।
छा जाती जब घोर निराशा होती रात प्रलयकारी,
चमक कहीं बिजली–सी जाती तब बस याद तुम्हारी।

सपनों में भी जिन्हें नहीं सुख मैं ऐसा हूँ अभागा,
कड़ुआहट से बँधा हुआ है जीवन का मेरे धागा।
जीवन का मेरे धागा जिसको तोड़ नहीं पाऊँगा,
प्रश्न यक्ष जीवन का तो क्या सुलझा नहीं पाऊँगा।
तुम चाहो तो दे सकती हो मेरे प्रश्न का उत्तर,
एक झलक भी दिखला दो यदि इस जीवन के अंदर।

मकड़ जाल में उलझ गया है आज हमारा जीवन,
विगत घेर कर आहत करता आज विकल मेरा मन।
आज विकल मेरा मन आँचल छाँव चाहता तेरा,
हृदय पुकार समझ सकती हो बस केवल तुम मेरा।
दुनिया है व्यापार ये रिश्ते क्या हैं बस एक मेला–,
तुम आकर अवलम्बन दे दो मैं हो गया अकेला।

पल पल होता परिवर्तन हर रूप बदल जाता है
कल का जो था दृश्य आज वह नजर नहीं आता है।
नजर नहीं आता है पर रहती है उसकी स्मृति,
विगत जिन्दगी के कुछ क्षण जो होते कभी न विस्मृत।
लेकिन तुम अब भी मुझको दिखलाती हो बस वैसे,
हुआ न कोई परिवर्तन अद्‌भुत इतनी तुम कैसे।

अगर परिवर्तन की धारा में तुम भी यों बह जाती,
मेरी सुकोमल भावनाएँ फिर मुझको नहीं जगातीं।
मुझको नहीं जगाती मैं होता तो मृत्प्राय–सा,
जीवन भर चलता रहता बस केवल मात्र यंत्र–सा।
तेरी स्मृति हृदय में टिमटिमाती बनकर तारा,
मेरे मनोंभावों का सृजन अवलम्बन भी हमारा। 18.04.2010

देवी रूप

इतनी सुन्दर स्वच्छ लड़की
मेरी आँखों को नहीं दिखी
बचपन से आज तक
ऐसा लगा मुझे
देख कर उसे
ढूँढ़ते रहते हैं नेत्र
जाने क्यों
निहारना चाहते हैं उसे
लगातार

इतनी सरल पावन छवि
सहजता से
उतरी हृदय
जिसने भर दिया
सूखी तलहटी लबालब
दरश मात्र से

मन मुग्ध
मोह हो गया उससे
मस्तिष्क में
बना लिया स्थान
बैठी है चुपचाप
पकड़ लिया
मेरे सोचों को
अद्वितीय माधुर्य से

क्या पता
कल उसकी स्मृति धूमिल हो जाय
ऐसा अनुभव है
जिस वृक्ष के तले सोचा था
जेठ की दुपहरी बिताऊँगा बैठकर
उस वृक्ष ने पत्ते गिरा दिये
एक दिन

पता नहीं
जाने क्यों
एक अजीब तरह
मेरा हृदय
तड़पता है उसके लिए
ऐसे लगता है जैसे मेरी सोच से
निकली वह लड़की
कोई टुकड़ा है
एक शाखा है उस पौधे की
जिसे मैंने आँगन में लगाया था

अगर ऐसा न होता
तो मेरे विचारों में
न होती पावनता
सुन्दरता सुन्दरता ही रह जाती
नहीं बन पाती यह छटा
जिससे लिपटा
भूत भूल जाता
वर्तमान सुगन्ध से भर जाता–
सत्य है मेरी आँखें
खोजती हैं उसे
जब भी अवसर मिलता
देखता
देखकर
गद्‌गद हो जाता हृदय
मन को मिल जाती शान्ति
शान्ति को पाकर
शुरू होता मंथन
तब मेरा चिन्तन
लेता जो सरूप
उसमें वह लड़की
दिखायी पड़ती
देवी रूप..........।

13–10–10

एक बिन्दु

किताब का पहला पाठ
लिख रहा था नकल
अनजाने लग गया
एक बिन्दु
रुक गया सब कुछ
जिसमें समाहित हो गया
सारा चिंतन
बिन्दु लगा
इतना विलक्षण

इस बिन्दु ने
मथा है मुझे
पिघला दिया
बह रहा हूँ
उसी प्रवाह में

अगर यह बिन्दु लगता
पहले कवि होता
बस लिखता रहता
जिस तरह उसे देख रहा हूँ

बिन्दु को लेकर
बनाना चाहा परिधि
कितना है फैलाव
नापना चाहा

भूल गया
इतनी छोटी बात
वह पृष्ठ में कैसे आयेगा
जो है असीमित

इस पृष्ठ पर और भी बिन्दु हैं
वे भी जब लगे थे
कचोट हुई थी
पर दो–तीन पंक्ति के बाद
चली गयी
जिसे समझने के लिए
दोहराना पड़ेगा पाठ

पर यह बिन्दु उन सबसे पृथक्
बिन्दु से बन गया केन्द्र
उस वृत्त का
जिसका निर्माण बाकी है।

14–10–10

अपना दर्शन

यह दुनिया है इस दुनिया में, कोई करता किसी से प्यार नहीं।
अपना अपना बस मतलब है, यहाँ कोई किसी का यार नहीं।

यह बात समझ में आती है, जब आधी उमर गुजरती है।
चलती का नाम बस गाड़ी है, जिन्दगी तब ऐसे लगती है ।

गिर कर उठ कर चलते रहना, यदि इसको ही कहते जीवन।
तो कभी नहीं मिट सकता है, मेरे जीवन का खालीपन।

इस खालीपन को भरने का, मैं खोज रहा कोई साधन।
लेकिन अब तक किसी निर्णय पर, पाया न पहुँच मेरा चिन्तन।

जिसका कोई अस्तित्व नहीं, हाँ–हाँ करता मैं उससे प्यार।
जीने के लिये इस जीवन को, कुछ न कुछ तो चाहिए आधार।

कल्पना में ही वह हो सकती, मेरे प्यार का जो दे दे उत्तर।
हो जायेगी वह भी धूमिल, यदि इस भूतल पर गयी उतर।

इसलिये कल्पना के जग में, मैं उससे मिलता रहता हूँ।
अपने जीवन के रहस्यों को, मैं कभी न उससे कहता हूँ।

मैं नहीं चाहता उसका मन, हो जाये मेरे जैसा अधीर।
हाँ उसे देख कर मिट जाती, मेरे तन मन की सकल पीर।

जिसका कोई अस्तित्व नहीं, कैसे हो सकता उससे प्यार।
मन को राहत मिलती प्रत्यक्ष, अनुभव कहता अपना पुकार।

किसी की श्रद्धा आहत करना, मानता कभी न बुद्धिमानी।
यह भी सच श्रद्धा भी बनती, मानवता के लिए परेशानी।

ईश्वर तो नहीं पर ईश्वर–सा, कल्पना में ही छुपा मेरा प्यार।
उसमें ही मुझको दिखता है, जीवन का क्या है छिपा सार।

इस तरह मैं अपने जीवन की, रिक्तता को पूरी करता हूँ
यह मेरा अपना दर्शन है, जो अपने सुख हित लिखता हूँ।

15–10–10

मेरा मन

देख कर तुमको लग रहा मुझको ऐसा,
रात का अन्त कर उतर रही जैसे उषा।
निशा के तम को धो रही है अपनी लाली से,
फैला आलोक मिटा दी गगन की उदासी।

नीड़ में सोये खग गण उठ गये चहचहा कर,
क्षितिज पर उड़ चले पंख अपने फैलाकर।
अपनी भाषा में वे जो बोलते हम नहीं जानते,
पी कहाँ पी कहाँ का कुछ अर्थ है यह हम मानते।

देखकर तुमको सो रहे मेरे अरमानों को,
दिया झकझोर चुपचाप पवन ने आके।
घिर आयी फिर काली घटाएँ इस ज्येष्ठ में,
मुरझायी हुई जाग उठी फिर से आशा

देख कर तुम को भूल जाता मेरा अपनापन,
हिलोरे मरता है हृदय में एक ऐसा पन।
तोड़ देना वह चाहता है आज सारे बंधन,
तुम्हीं में लय हो जाना चाहता मेरा मन।

18.7.10

तस्वीर

तुम्हें देख कल्पना में बनी थी जो तस्वीर,
वह होने देती नहीं मुझकों कभी अधीर।
मुझको कभी अधीर सदा रहती मुझकों दिखलाती,
होता है आश्चर्य भेष जब बदल सामने आती।
देख तुम्हारा भेस बदल पाया न मैं विचारधारा,
अपने मन को समझाता हूँ लेकर तेरा सहारा।

तुम्हें देख मन में मेरे फूट पड़ा जो स्रोत,
हृदय में ऐसे भरा तैर रहा ज्यों पोत।
तैर रहा ज्यों पोत खोज पाता नहीं कहाँ किनारा,
मेरे मन में बहा दिया तुमने कुछ ऐसी धारा।
सोच रहा हूँ किस प्रकार से तुम आओगी पास,
बिना तुम्हारे जीवन मेरा रहता सदा उदास।

मेरा पागलपन कहिए अथवा कहिए झुँझलाहट,
तुम्हें देख कर भूल मैं जाता हूँ अपनी कड़ुवाहट।
हूँ अपनी कडुआहट तो तुम मेरे लिये अलौकिक,
सच है मेरी नजरों में तुम कभी रही न भौतिक।
तुम्हें पकड़ना चाहूँ तो तुम नहीं पकड़ में आती,
तुम्हें भूलना चाहूँ तो मानस पर आ छा जाती।

दुनिया के तिकड़म से बचकर खुद को रखना निर्मल,
मुश्किल हो गया देवि शुद्ध न रहा वायु न ही जल।
शुद्ध न रहा वायु न ही जल तो तुम कैसे रहती,
जैसे मेरी कल्पना में तुम आज तलक रही दिखती।
स्यात् कल्पना की दुनिया से अगर निकल तुम आती,
दिखती जितनी स्वच्छ सुघड़ हो कभी नहीं रह पाती।

16–10–10

दृष्टि

कहानी लिखूँगा गुड़िया की, सोच यह थी मेरे मन की।
मगर वह हो न सकी पूरी, रह गयी इच्छा अधूरी।

एक दिन मन था मेरा क्लान्त, सोच रहा कैसे मिलेगी शान्ति।
किशोरी एक वहीं पर देख, सोच में पड़ गया मेरा विवेक।

कहानी बना सका न जिसकी, याद आयी उस गुड़िया की।
भावना लेनी लगी लहर, पड़ा उसका मुझ पर यूँ असर।

उसमें कुछ ऐसा रहा निर्विशेष, जिसे सके नेत्र न अब तक देख।
मगर वह क्या बस बन गया प्रश्न, उत्तर लगा खोजने मेरा मन।

कहानी जो मैं गया था भूल, लगा जैसे वह खड़ी समूल।
मुग्ध उस पर हो गये मेरे प्रान, स्वयं में विस्मृत हुआ महान्।

मेरा अपना है एक दृष्टिकोण, जिसे मैं सकता कभी न तोड़।
कहानी में आ गया एक मोड़, हृदय में होने लगी कचोट।

लगा मेरे उर में झूला डाल, झूलने लगी वह आकर बाल।
उमड़ पड़ा हृदय में वात्सल्य, हो गया उस क्षण उसके बस्य।

यद्यपि यह है मेरी अपनी सोच, मगर कोई भी निःसंकोच।
अगर कर ले विकसित यह दृष्टि, दिखेगी ता क्षण ही नयी सृष्टि।

17–10–10

मिट्टी की गिलहरी

अपनी नन्हीं नन्हीं आँखें चारों तरफ घुमाती।
सहमी सहमी एक गिलहरी उठा कर चावल खाती।
इधर कूदती उधर कूदती चक्कर कई लगाती।
और घूम कर वहीं पर आकर लेकर चावल खाती।

मेरी गोदी में बैठी थी देख गिलहरी मेरी बेटी।
मैंने रोका बहुत मगर वह एक न मानी उठकर दौड़ी।
भगी गिलहरी जान बचा कर तुरन्त चढ़ गयी नीम के ऊपर।
हो निराश बेटी चिल्लायी पापा लाओ उसे पकड़कर।

मैंने उसे समझाना चाहा पर उसने मेरी एक न मानी।
मिट्टी की तब बनी गिलहरी धर दी उसके आगे आनी।
मिट्टी की वह देख गिलहरी खुश हो लगी बजाने ताली।
गयी रसोई चावल लायी रखकर बोली खा हाली हाली।

मिट्टी की वह बनी गिलहरी उठा कर चावल न खा पायी।
तब बिटिया को गुस्सा आया पटक कर उसको फिर चिल्लायी।
मैंने कहा न अब चिल्लाओ पटक गिलहरी तुमने मारा।
वह बोली मिट्टी की गिलहरी झूठ पकड़ गया आपका सारा।

उसकी सुनकर ऐसी बातें उठा कर उसको हृदय लगाया।
बेटी तू आदर्श मेरा है मन में मेरे भाव यह आया।
गोदी से वह उतर कर नीचे बोली बात कहूँ एक सच्ची,
पापा क्या तुम समझ रहे हो अब भी मैं दूध पीती बच्ची।

सोच न पाया अब क्या बोलूँ बस बेटी को खूब दुलारा।
नहीं बड़ों से मिल सकता है जो बच्चों से मिलता सहारा।

21–10–10

गौरैया और बच्चे

एक गौरैया का जोड़ा था,
उनके थे दो बच्चे।
दोनों स्वस्थ सरल सुन्दर थे,
दिल के भी बड़े अच्छे।

माँ अरु बाप चुनाते रहते,
दिन भर ला ला दाना।
जब तक पंख नहीं बढ़ जाते,
कभी न बाहर जाना।

कभी किसी की मृदु वाणी पर,
भी विश्वास न करना।
कोई कुछ भी दे खाने को,
भूल से भी नहीं खाना।

माँ अरु बाप की बातें बच्चे,
सदा अमल में लाते।
उड़ सकते ऐसा मन कहता,
फिर भी नहीं निकलते।

एक रोज बच्चों के सम्मुख,
आयी एक गौरैया।
बच्चों ने नमस्कार किया,
बोली जुग जुग जियो भैया।

बच्चों ने जब परिचय पूछा,
मुझको मौसी कहना।
दीदी ने मुझको भेजा है,
तुम्हें सिखायें उड़ना।

दोनों बच्चों में ता क्षण ही,
उत्पन्न हुआ मतभेद।
गुड्डू उड़ने चला सीखने,
गुड्डी ने कहा खेद।

उड़ पाया नहीं दूर तक,
कोशिश कर गया हार।
मौसी मुझे बचाओ अब,
कर उठा करुण पुकार।

मौसी कह कर यह गयी,
पूर्ण हुआ इंतकाम।
कुछ पल में आयी बिल्ली,
किया गुड्डू का काम तमाम।

माँ अरु बाप लौट घर आये,
गुड्डी तब सब बात बताई।
दोनों बहुत देर तक रोये,
रंजिश बने सदा दुःख दाई।

22–10–10

चूहे की शादी

हुई उमर चूहे की आधी,
सोचा अब मैं कर लूँ शादी।
मुश्किल था अब दुलहन पाना,
लगा सोचने कोई बहाना।

पंडित जी के पास में आया,
उनको निज वृत्तान्त सुनाया।
पंडित जी का खुला पिटारा,
उसमें से एक तंत्र निकारा।

बेटा इसे गले लटकाओ,
चले किसी इनवरसिटी जाओ।
लगे तुम्हें जो सबसे अच्छी,
चाहे वह हो कितनी सच्ची।

आकर नाम पता बतलाओ,
तंत्र दूसरा फिर ले जाओ।
सुनकर चूहा खूब हरषाया,
चूहिया एक पंसद कर आया।

दिया तंत्र पंडित ने सच्चा,
कहा चले जाओ अब बच्चा।
रात हो जायेगी जब आधी,
लेना पहन ये कुर्ता खादी।

एक मिलन यदि हो गया प्यारे,
हो जायेंगे वारे न्यारे।
तभी बनेगी वह घर वाली,
बचन न मेरा होगा खाली।

रात पहन कुर्ता चला चूहा,
रहती थी जहाँ चूहिया नेहा।
नेहा को कुछ भय था भारी,
चिंतित थी इसलिये बेचारी।

चींटी एक उसकी थी सहेली,
सुलझा दी उसने यह पहेली।
तब से थी वह सहमी रहती,
बाहर रात न कभी निकलती।

चूहा चुपके चुपके चल के,
पहुँचा पास में जैसे बिल के।
मद में अंध क्रूर वह चूहा,
बिल में घुस पकड़ना चाहा नेहा।

बिल्ली एक वहीं थी सोई,
चूहे को थी नजर न आई।
उठी अचानक ली अँगड़ाई,
पकड़ कर चूहा को लिया खाई।

24–10–10

भैया

मैं देख रहा उस बाला को,
जो अभी अभी घर से आयी।
भीगी थी देह पसीने से,
चल रही चाल ज्यों अलसायी।

मुख पर बिखरे उठ रहे केश,
जिनमें समा रही स्वेद बूँदे।
आकर बैठी पीपल नीचे,
संयत होते हो गयी व्यस्त।

दोनों हाथों से केश पकड़,
तन्मय हो बना रही जूड़ा।
कंचुकी के अंदर बद्ध कुच,
जिनका हो गया आकार बड़ा।

त्रयोदशी का चाँद लगा दिखने,
जैसे होकर पूरण मासी।
मन मोह लिया उसने मेरा,
दी मिटा हृदय की उदासी।

वायु ने अपने स्पर्श से,
कर दिया उसे फिर से प्रमुदित।
ग्रीष्म जैसे पीछे मुड़कर,
धर लिया रूप अपना बंसत।

ओठों से हवा में बिखरा दी,
मुस्कान की वह भीनी सुगन्ध।
मर्यादा से बँधा मेरा मन,
ता क्षण होना चाहा आबद्ध।

वह पीपल छाँव दुपहरिया का,
अरु पास उसके खाली पोखर।
इस जेष्ठ मास में ऐसा लगा,
जैसे वे सब अब गये हैं भर।

मैं उसे देखते देखते ही,
जैसे खुद को ही गया भूल।
एक हवा का झोंका आया फिर,
आँखों में दिया मेरी डाल धूल।

आँखों से उसे निकालने का,
करता था मैं जितना प्रयास।
उतना ही होता परेशान,
गया बैठ वहीं होकर उदास।

वह देख हमारी पीड़ा को,
उठ पास हमारे आती है।
भैया आओ मैं देखती हूँ,
कहती हुई कुछ सकुचाती है।

भैया उसके मुख से सुनकर,
मेरा रोम रोम सिहर जाता है।
मेरे विचार में ताक्षण ही,
विस्फोट एक हो जाता है।

अँगुली से लपेट दुपट्टे को,
आँखों पर मेरे रखती है।
मुझे लगी मेरी छोटी बहना,
वह वही जो घर में रहती है।

25–10–10

खोजता हूँ तुम्हें

खोजता हूँ तुम्हें
पता नहीं कैसे
उतर गयी हृदय में
निकलती नहीं
कभी
भ्रम हो जाता अकसर
मुझे
तलाशते तलाशते तुम्हें
दृश्य होता साफ
झुँझला जाता
खोजने लगता फिर
तुम्हें
कौन–सा रिश्ता है तुमसे
पता नहीं
पर मन ने
बना लिया
जिसमें बँधा
खिंच जाता हूँ तुम्हारी तरफ
तुम्हारा स्वरूप
विलक्षण
एक ऐसा भोलापन
जो देखा नहीं था
उसी में
उलझ गया।
तुम मुझे मिलोगी
नहीं जानता
पर तुम्हें भूल नहीं पाऊँगा
जन्म जन्मांतर
जब तुम नहीं होती
घेर लेती है निराशा
पर कभी तो मिलोगी
नहीं छोड़ पाता आशा
उसी से बँधा हूँ
कदाचित तुम न भी मिलो
तो भी नहीं भूल पाऊँगा
संजो कर रखूँगा
तुम्हें
हृदय में

कभी कभी लगता
तुम मेरे सामने खड़ी हो
वही सरलता
जिसमें सिमटना चाहता हूँ
अपने ढंग से
मैं तुम्हें जानता नहीं
फिर भी
तुम मेरे इतने करीब हो
जैसे
देह में आत्मा
भावनाएँ बहती हैं
क्या पता कल का
पर आज
तुम्हारे सिवा और भी
होगा कोई सुन्दर
नहीं लगता

तुम एक हो
याद करता कई तरह
तुम जानती हो
क्योंकि
तुम्हीं ने उलझाया है इस तरह
इसलिये अब तो पर्दा हटा दो
दिखा दो
अपना सौन्दर्य।

27–10–10

पत्र

खोज मेरी ज्यों तुम्हें देखकर लगा हो गयी पूरी।
मगर मिटा यह तुम सकती हो जो है बीच की दूरी।
होता है क्या प्यार अभी तक मैंने था नहीं जाना।
पता नहीं तुम में वह क्या है कर दिया मुझे दीवाना।

शेष रहेगी मेरे हृदय में जब तक याद तुम्हारी।
विचलित हो सकती नहीं तब तक कभी भी बुद्धि हमारी।
कोई कर ले लाख जतन चाहे कितनी मनमानी।
बंद ना करूँगा तेरे प्यार की लिखना कभी कहानी।

अपनी मोहक अदा दिखा कर तुमने यूँ उलझाया।
उलझ गया तुम में खुद ऐसे निज अस्तित्व गँवाया।
इसी आश में टिका है जीवन तुम्हें देख लूँ जी भर।
पता नहीं कल का क्या होगा जीवन है यह नश्वर।

मनः चक्षुओं से तुम मुझको दिखती रहती हर दम।
मेरे विरह की इस पीड़ा को तुम ही कर सकती कम।
आ जाओ मेरे पास हृदय का सुनकर के स्पंदन।
आकर के उर से लग जाओ यही चाहता अब मन।

उमड़ रही जो बात हृदय की वह मैंने लिख डाली।
मेरे पत्र का उत्तर भी तुम दे देना मुझे हाली।
है मुझको विश्वास न तुम मुझको निराश करोगी।
प्यार का उत्तर प्यार ही होता, नीति पर इसी चलोगी।

बना लिया मन ही मन मैंने साथी तुमको अपना।
तुमको लेकर साथ देखने लगा हूँ मैं अब सपना।
सपनों को साकार करूँगा यह मेरा निश्चय है।
वर तुमको देना ही पड़ेगा इसमें न संशय है।

31.10.2010

अरूप

नशा या जादू न जाने तुमने मुझ पर क्या किया,
बिन तुम्हारे एक पल भी मुझसे न जाता जिया।
इस समय मन से हमारे छिन गयी मेरी शान्ति है,
हर तरफ फैली हुई मुझको दिखाती भ्रान्ति है।

हर जगह हर वक्त अब मुझकों दिखाती तुम ही तुम,
अपने प्राणों से भी ज्यादा चाहते तुम को हैं हम ।
लाख कोशिश कर भूलना तुमको चाहा मैं मगर,
इस तरह हाबी हुई गयी भूल अपनी ही डगर।

मेरा दर्शन तुम से लिपटा बन गया तेरा बसन,
अलग तुम से कर न पाया कर लिया सारी जतन।
किस तरह मन को समझाऊँ न कोई आधार है,
बिन तुम्हारे जिन्दगी लगती मुझें निःसार है।

एक झलक ही देख तुमको मन मचलता है,
टूट रहा है हृदय जैसे मुझको लगता है।
रिक्त उर चाहता तुम उसमें आकर बस जाओ,
अगर बस न सको तो वादा तो करके जाओ।

नहीं मैं जानता तुम से मेरा क्या नाता है,
तुम्हारे बिना पर मुझको न कुछ सुहाता है।
हमारी खोज क्या हो पायेगी कभी पूरी,
सिमट जायेगी जिस दिन बीच की सारी दूरी।

एक ही नजर में तुम लगी मुझे इतनी सुन्दर,
नहीं निकल हृदय से पायी आज तलक एक पल भर।
खाते पीते सोते जगते बस है तेरा नाम,
अब तो पास मेरे आ जाओ कर दो पूरण काम।

सामने तुम हो तो संकोच में होती है दृष्टि
तुम्हारी नजरों में नहीं होना चाहता अशिष्ट
चाह नहीं पूरी हुई जी न भरा लखि रूप
धीरे–धीरे हो गयी तुम मेरे लिये अरूप।

2–11–10

सोनी

आँधी के साथ आयी वर्षा, हर तरफ तबाही मचा गयी।
कितने घर छप्पर उजड़ गये, वृक्षों को कितने ढहा गयी।

मेरे आँगन में नीम एक, उस दिन आँधी में उखड़ गयी।
दुःख हुआ मुझे उस दिन भारी, रोते रोते ही शाम भयी।

उस शाम को न जाने कहाँ से, एक छोटा तोता का बच्चा।
मेरी नजर पड़ी तो पकड़ लिया, वह लगा मुझे इतना अच्छा।

फिर उसके लिए एक पिजड़ा, दूसरे ही दिन जाकर लाया।
उसमें रख दिया उस बच्चे को, मेरा प्यार उमड़ उस पर आया।

होता जब भी मेरे पास वक्त, मैं उससे बातें करता था।
उसका सुख–दुख सर्दी गर्मी, जैसे मुझे अपना लगता था।

मेरे मन को उसने मोह लिया, मुझे लगी थी वह इतनी मोहनी।
इस लिये मैं उसका नामकरण, कर दिया मात्र केवल सोनी।

मैं यदा कदा भावना में बह, सोनी प्यारी गुड़िया कहता।
परिवार के लोग और सुनते, यह ध्यान भी मन में न रहता।

कुटुम्ब की बातों को सुनकर, बस केवल मैं मुस्कराता था।
उस तोती से बस प्रेम मेरा, दिन प्रति दिन बढ़ता जाता था।

बाजार से एक दिन घर आया, देखा तब था पिजड़ा खाली।
बेटा आओ खाना खा लो, माँ ने रख दिया परस थाली।

सोनी को देख न पिजड़े में, मैं रोक नहीं आँसू पाया।
मैं बड़े जोर चीख पड़ा, पर किसी का न उत्तर आया।

सब लोग थे बस खामोश खड़े, मैं बोला कहाँ मेरी सोनी।
जीवन ने पहली बार मुझे, दिखलायी थी यह अनहोनी।

बेटा मेरी असावधानी से, उड़ गयी तुम्हारी वह चिड़िया।
पर इस प्रकार क्यों रोते हो, ले आओ कल उससे बढ़िया।

माँ की बातों को सुनकर के, सोचने लगा था मन ही मन।
अब पाऊँगा कैसे सोनी, सम्मुख था मेरे खड़ा प्रश्न।

घर छत पेड़ों की फुनगी पर, जहाँ तक जा पाती मेरी नजर।
सोनी को खोजा करता हूँ, जीवन में मैं अब भी अकसर।

जाने अनजाने सोनी से, बना लिया था जो मैंने नाता।
जब तक यह मेरा जीवन है, उसे कोई नहीं मिटा सकता।

क्योंकि मैंने उस पिंजड़े को, दिया सदा सदा के लिए तोड़।
अब कोई न उसमें आ सकता, चाहे वह हो कितना बेजोड़।

4–11–10

शर्म

असंख्य दीपों की बिखरी माला,
घर घर गली गली उजियाला।
पर मेरे मन का एक कोना,
जहँ मुश्किल प्रकाश का होना।

खड़ा हुआ हूँ मैं इस तम में,
देख रहा बाहर प्रकाश में।
हँसी खुशी बिखरी मादकता,
मधु से भरा हुआ ज्यों छत्ता।

स्वर न किसी का मुझे सुनाता,
शोर पटाखों का ही आता।
आँख देख रही सिर्फ नजारा,
दिखता सब ऐसा उजियारा।

भरे हुए द्राक्षी से प्याले,
अगणित पी रहे हैं दिलवाले।
वर्दी धोती पैण्ट पायजामा,
और भी तरह तरह की जामा।

चहुँ दिश हो रही लक्ष्मी पूजा,
धन से प्रिय मोहि दिखा न दूजा।
उग्रवाद जिनका है नारा,
देखा उनका दृश्य भी सारा।

बेड रूम में जो भी होता,
इस प्रकाश में वह भी दिखता।
देख देश की प्रगति यह सारी,
मन में खुशी हुई मुझे भारी।

खा पीकर सब मना दीवाली,
सो गये सब फिर भी उजियाली।
किसी ने मुझसे कुछ नहीं पूछा,
सारी रात यही मैं सोचा।

मानव संस्कृति की यह यात्रा,
पहुँचेगी कहाँ नहीं मुझे पता।
पर पहले अब में कुछ अन्तर,
कर पायी न भेद मेरी नजर।

मानव न मानव बन पाया,
बँटा हुआ बँटा ही दिखलाया।
शोषण उत्पीड़न की रस्सी,
लगी गले में अब भी फाँसी।

सारे कानून और नियम धर्म,
जग में फैले जितने भी कर्म।
है गूढ़ छिपा इनका जो मर्म,
वह कहते आती मुझे शर्म।

5–11–10

नयी नीति

होता कौआ चतुर मगर,
यह भेद समझ न पाया।
पाल पोस कोयल की बच्ची,
उसने एक उड़ाया।

बच्ची उड़ने लगी और,
जब समझी दुनियादारी।
एक रोज उसकी संगी मम्मी,
आकर उसे पुकारी।

वह कोयल बालिका लगी,
कहने तुम नहीं मेरी मम्मी।
हो सकती वह नहीं मेरी माँ,
जो हो इतनी निकम्मी।

कोयल ने पुचकार कर बेटी,
राजनीति सिख लायी।
राजनीति के बिना यह जीवन,
बनता है दु:खदायी।

इस दुनिया में अनुजीवी ही,
सदा ऐश करते हैं।
संतान का भी बोझ,
दूसरों के ऊपर रखते हैं।

माँ की सुनकर बात बालिका,
कुछ पल लगी सोचने।

अपने भावी जीवन के,
वह, लगी देखने सपने।

ऐश मनाना ही जीवन का,
माँ का दिया उपदेश।
सदय हृदय उस बालिका,
के उर धँसा न लेश।

कौआ के घोंसले में उसने,
जीवन को देखा था हँसते।
तटे फूटे उस आवास में,
उस छोटे परिवार में रहते।

यदि धोखा ही राजनीति है,
तो फिर नहीं मुझे है करना।
माँ तुम से जो भूल हुई है,
बेटी को है उसे सुधारना।

मम्मी आप छमा करे मुझको,
राजनीति से दूर रहूँगी।
आप चलीं जिस पथ पर माता,
अब उस पर मैं नहीं चलूँगी।

वक्त चाहे कुछ भी आ जाये,
अनुजीवी मैं नहीं बनूँगी।
अपने बच्चे के पालन की,
नयी नीति मैं शुरू करूँगी।

6–11–10

चेहरा

वह तन पर पहने ऐसे वस्त्र,
चिपके जिसमें दिखते हर अंग।
इस भेष में उसका वह सरूप,
कर गया मुझे हत चेत अरु दंग।

सुन्दरता तो स्वयं है प्रकाश,
वह कभी नहीं छुप पाती है।
पर देखने वाली आँखों में,
वह अलग अलग दिखलाती है।

इसलिये सदा भ्रम रहता है,
सबकी अपनी अपनी है सोच।
पर कुछ विचार ऐसे भी हैं,
जिनमें अब होना चाहिए लोच।

मैं नहीं चाहता कभी किसी,
पर थोपना अपना विचार।
हर व्यक्ति देख सकता खुद ही,
जीवन का क्या है छुपा सार।

लिपटी हुई आधुनिक वस्त्रों से,
दिखती जब नारी सुकमारी।
ले जाती बहा फिर भावों में,
कहता मैं अपनी लाचारी।

वह मेरे हिय स्पंदन में,
कुछ पल के लिए ठहर जाती।
अपने प्रभाव का एक अंश,
मुझको दे करके ही जाती।

चिपके वस्त्रों में अंग निखर,
अपना आकार दिखाते थे।

जल से विहीन जैसे सरिता,
बस नजर वे मुझको आते थे।

पत्थर कंकड़ बालू से भरी,
ऊबड–खाबड़ पगडण्डी सी।
रही भटक दृष्टि उस बीथी पर,
थक गयी और हो गयी प्यासी।

आँखों की प्यास बुझाने का,
तब लगा खोजने मैं साधन।
उस पगडण्डी का ध्यान छोड़,
आ गया ध्यान उसका आनन।

बिखरे हुए काले केश लगे,
मुझको आषाढ़ के ज्यों बादल।
कुछ पल में ही अब बरसेंगे,
हो जायेगा यहाँ जल ही जल।

भोले मुखड़े पर जब देखी,
मैंने एक छोटी–सी बिंदिया।
आ गयी गाँव की याद मुझे तब,
अपनी वह छोटी कुटिया।

तब लगने लगा मेरे मन को,
जैसे वह जानी पहचानी।
पर भेष बदल कर आयी थी।
इस लिये हुई थी हैरानी।

दुनिया के हर बदलाओं से,
मुझे लगा कि चेहरा बहुत दूर।
कैसे भी वस्त्र पहनने से,
मिट सकता उसका नहीं नूर।

7–11–10

नियम

थी घर से स्कूल की मेरी,
आठ किलोमीटर दूरी।
कक्षा आठ में प्रति दिन मुझको,
पैदल करना पड़ता पूरी।

मई महीने के दिन थे वे,
गर्मी थी अपने यौवन पर।
मार्ग में चलते चलते कपड़े
भीग के हो जाते थे तर।

एक रोज मुझे प्यास लगी थी,
लगा कि अब आयेगा चक्कर।
बैठ गया एक तरु के नीचे,
डर गया कहीं न जाऊँ गिर।

कुछ स्फूर्ति जब आयी तन में,
पास गाँव उसमें चला गया।
कच्ची मिट्टी का एक घर था,
सुन्दर देख मुझे मन भाया।

घर से निकल कर एक बालिका,
उसी समय ज्यों बाहर आयी।
बहुत जोर से प्यास लगी है,
मैंने उसे यह बात बतायी।

बिना कहे कुछ गयी वह घर में,
लोटा में पानी भर लायी।
मैंने हाथ में पकड़ा ही था,
तभी एक औरत वहाँ आयी।

वह औरत कुछ कहना चाह रही,
पर लड़की ने चुप करवाया।

मैं पानी पी चुका देख कर,
उसका क्रोध और बढ़ आया।

वह बेटी को डाँट रही थी,
बिना जाति अरु धर्म को जाने।
लोटा इसके दिया हाथ में
गलती बेटी अपनी माने।

उस औरत के क्रोध का कारण,
अब था मेरी समझ में आया।
मुझे लगा कि मेरी प्यास ने,
धर्म के इनको दुःख पहुँचाया।

यही सोच कर धीरे–धीरे,
घर का अपने पकड़ा रस्ता,
तभी दौड़ कर उस बालिका ने,
पीछे से मेरा पकड़ा बस्ता।

पीछे मुड़कर कहा तब मैंने,
अब करिये मत यह नादानी।
मेरे लिये नियम तोड़ा है,
किया नहीं तुमने बुद्धिमानी।

अच्छा तो तुम ही बतलाओ,
नियम धर्म ये किस लिये होते।
उसकी सुनकर बात गये उड़,
जैसे मेरे हाथ से तोते।

मेरे जीवन स्मृतियों में,
सदा सुरक्षित बनी रहेगी।
नियम तोड़ने वाली बाला
कभी नहीं मुझको भूलेगी।

8–11–10

श्यामा

श्यामा नाम की सुन्दर चिड़िया,
एक जंगल में रहती।
जो भी उसे देख लेता,
वह उसके मन को हरती।

दूसरी चिड़िया जलती रहती,
देख उसकी सुन्दरता।
राग द्वेष से हृदय उनका,
अंदर रहा सुलगता।

श्यामा के ही साथ में रहती,
उसकी एक सहेली।
कौओं का नेता एक कौआ,
उससे जाकर बोली।

मामा सुनती हूँ जंगल में,
इज्जत बड़ी तुम्हारी।
जंगल के राजा भी करते,
हैं आप की तरफदारी।

चिड़िया की यह बात सुन कौआ,
फूला नहीं समाया।
नेता वाला प्यार उमड़,
उसके चेहरे पर आया।

बोला बेटी समझदार तुम,
मुझको बहुत दिखाती।
मेरी पार्टी में तुम बेटी,
बोलो क्यों नहीं आती।

फिर दोनों में हुई देर तक,
राजनीति की बातें।
और सुबह ही दिखा शिकारी,
एक जंगल में आते।

धोखा से पकड़ा श्यामा को,
अरु पिजड़े में डाला।
हुआ सबेरा शहर में जाकर,
बेच उसे फिर डाला।

पिजड़े में आते ही श्यामा,
को लिया घेर उदासी।
कई दिनों तक उस पिजड़े में,
रही वह भूखी प्यासी।

पर उसकी हालत के ऊपर,
तरस न कोई खाया।
कई मालिकों अरु पिजड़ों में
खुद को उसने पाया।

भूल गयी वह चंचलता सब,
शव–सी जैसे दिखती
जो भी जैसा कहता करना,
वैसा ही वह करती।

इसी तरह वह एक रोज मेरे,
भी घर में आयी।
उसे देखकर मेरी आँखें,
जाने क्यों भर आयीं।

भाषा नहीं समझ सकता मैं,
यद्यपि उस श्यामा चिड़िया की।
पर उसकी वेदना अरु पीड़ा
जैसे लगी मुझे मेरे मन की।

मैंने पिजड़ा खोल दिया और,
कहा जहाँ इच्छा हो जाओ।
बहुत दिनों से कष्ट सहा है,
अब हो मुक्त जरा मुस्कराओ। 9–11–10

प्रतीक्षा

है मुझे उम्मीद एक दिन,
पूर्ण होगी मेरी इच्छा।
इसलिये मैं आज भी बस,
कर रहा तेरी प्रतीक्षा।

आज भी तेरी छटा का,
छाया ही मुझ पर असर है।
वक्त की रफ्तार पाया,
कर न उसको बे असर है।

तुम जहाँ पर बैठती,
चलती जहाँ पर खेलती थी।
रूठती हँसती मचलती,
और मुझको छेड़ती थी।

उस दिन बारिश से मैं भीगा,
और तुम मुझको गिराकर।
भूल कर उस पल हया को,
हँस पड़ी थी खिलखिलाकर।

दंग उस दिन मैं हुआ था,
देख कर सूरत तुम्हारी।
और उस दिन तुम लगी थी।,
प्राण से ज्यादा ही प्यारी।

बस उसी दिन से बसी,
मन में मेरे सूरत तुम्हारी।
लिपट कर जिससे न निकली,
आज तक बुद्धि हमारी।

एक पल पाती निकल न
सोच में रहती हमारी।
भूल पाती न कभी,
निश्छल अदायें वे तुम्हारी।

मेरे भावुक मन में तुमने,
इस तरह से डाला डेरा।
याद तेरी नीड़ बनकर
बन गया तेरा बसेरा।

सिमट तुम में बस गया था,
बिखर कर अस्तित्व मेरा।
तुम हमारी खोज हो,
जीवन की हो जैसे सबेरा।

और उस पल की कभी,
न याद मुझको भूल पाती।
जब मेरे शब्दों को तुम,
संगीत देकर गुन गुनाती

तुम–सा सुन्दर और कोई,
है नहीं मैं मानता हूँ।
एक तुम ही हो हमारी,
बस यही मैं जानता हूँ।

इसलिए हर साँस मेरी,
याद करती बस तुम्हारी।
अब मिलन की उस घड़ी की,
है प्रतीक्षा बस हमारी।

10–11–10

नाता

एक आम के पेड़ के ऊपर,
रहता था बुलबुल का जोड़ा।
दिन प्रति बढ़ती जाती गरीबी,
कमर को उनके तोड़ा।

परेशान होकर बुलबुल ने,
घर को अपने छोड़ा
गया शहर में लगा कमाने,
प्रिया से नाता तोड़ा।

धीरे–धीरे बीत गयी,
बुलबुल की सकल जवानी।
बच्चे हो गये बड़े मगर,
कम हुई नहीं परेशानी।

कभी कभी बुलबुल को लगता,
दुनिया सच या माया।
पता नहीं क्या खोज रहा वह,
नहीं समझ में आया।

एक रोज भावों में खोया था,
बुलबुल बेचारा।
तभी एक छोटी बच्ची ने,
आकर उसे पुकारा।

बच्ची की सुन बात,
जैसे बुलबुल ने उसे निहारा।
भीग गया अद्‌भुत स्नेह से,
तन मन उसका सारा।

बुलबुल के ह्रदय में जो,
वात्सल्य उमड़ था आया,
आज तलक जीवन में उसने,
भाव न था यह पाया।

पुलकित हो ह्रदय में उसके,
बह उठी प्रेम की धारा।
बस उसको देखता रहा वह,
ज्ञान सिमट गया सारा।

इतनी सुन्दर स्वच्छ सरल,
देखी थी न कोई बच्ची।
बुलबुल की नजरों में वह,
बस दिखी थी इतनी अच्छी।

बहकर भावों में बुलबुल ने,
बेटी उसे पुकारा।
पर बेटी सुनते ही उसने,
अपने पंख पसारा।

सोच रहा बुलबुल अपने मन,
कैसे उसे समझाऊँ।
शब्द खो चुके सत्य,
सत्य कैसे मैं उसे दिखाऊँ।

पर ह्रदय तो मान चुका
बेटी का उससे नाता।
नहीं भूल वह बुलबुल सकता
अपने मन से कहता।

बिना जान पहचान के भी,
बन जाते हैं कुछ रिश्ते।
दुनिया में सारे रिश्तों में।
सबसे सुन्दर लगते।

11–11–10

तितली

रंगबिरंगी एक बहुत प्यारी,
छोटी–सी तितली।
फूलों के संग बातें करती,
हँसती और मचलती।

कभी इधर तो कभी उधर,
वह चक्कर कई लगाती।
पूरे दिन मेहनत करती,
पर थकी नहीं दिखलाती।

तेज हवाओं में भी उड़ उड़,
कला बाजी को करती।
फूल बुलाते ही रह जाते,
पर वह एक न सुनती।

अपनी ध्वनि में मस्त पवन में,
वह निर्द्वंद्व बिचरती।
मन आता तो सखा सहेली,
को भी लेकर उड़ती।

गली बाग खेतों गाँवों में
होते उसके चर्चे।
उसे पकड़ने की कोशिश,
करते रहते नित बच्चे ।

मगर आज तक कभी किसी के
नहीं पकड़ में आयी
पर उसकी सुन्दरता रहती,
मन में मेरे समायी।

12–11–10

ऐसे भी पल

जीवन के कुछ ऐसे भी पल,
बह जाते पर उनका कल कल।
बैठा रहता हिय के अंदर,
देता जब छेड़ वह अपना स्वर।

तब लेता वक्त फिर अंगड़ाई,
लगता जैसे वह दिखलायी।
जिसे देख देखने लगा और,
खोजने लगा फिर उसमें ठौर।

जग की सारी मिल मनोरमा,
सिमटी अपना सूक्ष्म रूप धरा।
थक गयी खोज में जब आसन,
आकर बैठी उसके आनन।

प्रकृति समस्त एकत्रित हो,
धर लिया हो ज्यों अपना सरूप।
जिसमें सप्तसागर अंतरिक्ष,
तारे नक्षत्र गृह अरु मयंक।

लख दिव्य उसका सौन्दर्य दिगन्त,
हतप्रभ विस्मृति हो रहे दंग।
सब छवियों को कर दिया पूर्ण,
उसके सम्मुख सारे अपूर्ण।

उस प्रकुल ओप की छवि निहार,
हो तरल लगा बहने उस पल,
तब से निश दिन बहते बहते,
हो गया सरल घिस गये विकार।

29.12.2010

रिश्ता

आज भी खोजती तुमको ही,
हैं मेरी आँखें।
एक युग हो गया
लगता है ज्यों तुम्हें देखे।

वही सब कुछ मगर,
लगता कि जैसे जाली है।
बिना तुम्हारे जिन्दगी,
लगता जैसे खाली है।

मेरे मन ने जो लिया बना,
तुम से नाता है।
एक पल भी वह मुझसे
भूल नहीं पाता है।

यह भी मैं जानता,
तुम न मुझे मिल पाओगी।
मगर मेरे दिल से भी,
न दूर तुम हो पाओगी।

अधर पर आ गयी
अनजाने में पतली स्मित
उसी वैभव से भर गया
मेरा हृदय रिक्त।

एक सुख साथ लेकर,
जैसे कोई हवा चली।
तुम्हारी मोहनी सूरत,
लगी थी इतनी भली।

तुम्हारा मेरा यह रिश्ता,
बहुत पुराना है।
मुझे लगता कि यह,
जाना अरु पहचाना है।

तभी तो देख कर तुमको,
मेरे मन में आया।
आज तक तुमको मैं,
अपना बना न क्यों पाया।

13–11–10

बनी वह बात न

बनी वह बात न जिसको मैं बनाना चाहा।
भूल उनको न पाया, बहुत भुलाना चाहा।।
आज भी मन मेरा उनके लिए मचलता है।
मेरी सोचों की वह परवाह नहीं करता है।।

देखने की उन्हें चित् में बनी रहती चाहत।
रोकता हूँ तो करने लगती है मुझको आहत।।
नहीं मैं जानता उनमें क्या खोजती है नजर।
देख कर उनको मगर मन में उठ जाती है लहर।।

लिया मन ने बना उनसे जो अपना नाता है।
कहूँ किस शब्द से वह शब्द न मिल पाता है।।
उन्हें क्या उनकी अगर देख लेता हूँ छाया।
होता अभास उर में जिसे कुछ अद्‌भुत पाया।।

हो सकता उनका आज हो गया मैं दीवाना।
देखता उनको तब तक जीवन लगता सुहाना।।
उनके अभिमाद का मुझ पर हुआ है ऐसा असर।
अपने ही आप में उन्हें खोजने लगता अकसर।।

24–12–10

समता

इस अनन्त ब्रह्माण्ड के अन्दर,
कितने ग्रह–नक्षत्र अरु तारे।
नहीं समझ पाया कोई अब तक,
बस अनुमान लगाते सारे।

सबसे सर्वोत्तम यह धरती,
सौरमण्डल में लगती न्यारी।
भूतल पर भी सबसे अनिंद्य,
दिखलाती तो केवल नारी।

हाँ नारी ही जिसके बल पर,
यह प्रकृति बनती है सुन्दर।
पर सदा रही वह उपेक्षित,
टूटी है वह अपने अन्दर।

नारी के मनोज्ञ अवयव से,
बहती जो स्नेहमयी सरिता।
मानव के संस्कृति के अन्दर
भरती रही सदा वह शुचिता।

जिससे जीवन विकसित होता,
उसकी लिखकर करुण कहानी।
उत्कंप करने लगता तन मन,
नेत्रों में आ जाता पानी।

कितनी विवश लिये लाचारी,
ढोती जाती जीवन हँस कर।
मात्र वस्तु–सी बनी हुई है,
नारी इस भूतल के ऊपर।

कुछ सुधार बदली है स्थिति,
पर यह केवल न के बराबर।
नारी का सम्मान नहीं है,
कोई पद अधिकार भी पाकर।

दृष्टि नहीं मानव की बदली,
ज्ञान अपाहिज–सा दिखलाया।
एक वस्तु–सी बना कर उसको,
सौन्दर्य का उपहास उड़ाया।

भार्या नहीं रूपसी खोजने,
लड़की के घर लड़के जाते।
चन्द्र मिनट में देख कर बाला,
अपना निर्णय वहीं सुनाते।

अपनी बात नहीं कह सकती,
आह विवश कितनी है बाला।
यदि वह कोई कदम उठाले,
कुल कलंक की कहेंगे ज्वाला।

नारी की जो विकट परिस्थिति,
विज्ञजनों करिये जग जाहिर।
यह समाज क्या दुनिया बदलें,
मानव भी उसे समझें आखिर।

सौन्दर्य में पूर्णत्व छिपा है,
इन्द्रिय अनुभूति से जो ऊपर।
वसुन्धरा यह धन्य बनेगी,
नारी नर की समता पाकर।

28.12.2010

भोली भाली देश की जनता

चूहों ने जुलूस निकाला,
आरक्षण हमको भी दीजे।
वनराज मन्त्रिमण्डल में
जाति मेरी भी शामिल कीजे।

पता नहीं कितनी सदियों से,
बिल्ली हमको खाती आयी।
संसद में यह बात आज तक,
नहीं किसी नेता ने उठायी।

भीड़ देख चूहों की भारी,
पुलिस प्रशासन मन घबराया।
एड़ी चोटी का जोर लगाकर
भी जुलूस को रोक न पाया।

सफल जुलूस देख चूहों का,
शेर ने मन्त्रिमंडल बुलवाया।
कैसे इसका निराकरण करें,
प्रश्न नया एक बनकर आया।

बिल्ली बोली लोकतन्त्र में
चूहे भी मुँह खोल रहे हैं।
जिनको हम कल तक खाती थी,
हमको ही विष घोल रहे हैं।

एक बना स्पेशल बटालियन,
रखें राजधानी के अंदर।
जब जुलूस ले चूहा आये,
तुरन्त कीजिए उसको बाहर।।

बोला शेर मीडिया वाले,
इसका खूब प्रचार करेंगे।
अगले आम चुनाव के अंदर,
फिर हम कैसे जीत सकेंगे।

आह वोट तू नोट से बढ़कर,
मणि माणिक्य से भी है ऊपर।
देता सत्ता की महारानी,
जिनकी बाहों में सुख सागर।

सत्ता सुख के लिए आरक्षण,
चूहों को देने में हर्ज क्या।
चूहे चूहे को खायेंगे,
राजनीति में होता नहीं क्या।

जाति जाति को धर्म धर्म को,
नीति नीति को ही है खाती,
भोली भाली देश की जनता,
लेकिन इसको समझ न पाती।

01.01.2011

सचमुच

एक राज की बात बतायें,
आओ तुम मेरे पास।
अच्छा नहीं मुझे लगता है,
तुमको देख उदास।

बुझे बुझे से तुम रहते हो,
किसके लिये परेशान।
तुम्हें देख कर इस प्रकार से,
होती मैं हैरान।

क्या मुझको बतला सकते हो,
किसे रहे हो खोज।
तुम्हें देखकर मेरे मन में,
उठने लगती सोच।

कौन–सी वह ऐसी पीड़ा है,
हर पल तुम्हें सताती।
नेत्रों से वह बह न पाती,
शब्दों में न आती।

धीरे धीरे गलते गलते,
खुद को क्यों हो मिटाते।
स्यात् कहा मिथ्या था तमने,
प्यार मुझे हो करते।

सचमुच मुझसे प्यार,
यार तो क्या खोना क्या पाना।
कर्म कोई ऐसा कर जाओ
रखे याद जमाना।

30.01.2011

तुम्हें खोजने को ही जग में

तुम्हें खोजने को ही जग में,
लगा रहा हूँ फेरा।
तुम जब नहीं तो जैसे रवि बिन,
छाया घोर अंधेरा।

अस्त व्यस्त सब कुछ हो जाता,
गर तूफान आ जाये।
बिना तुम्हारे उजड़ा जीवन,
मेरा कौन बसाये।

नहीं बता मैं तुमको पाया,
उर का जो स्पंदन।
मन से मन की बातें करता,
तेरा ले अवलम्बन।

बनी हुई मन में रहती है,
तेरी छवि ही पावन।
बारह मासों में होता है,
ज्यों भू के लिए सावन।

वह छवि जो चित् को हरकर भी,
उर्ध्व विचार बनाती।
इसीलिए उर से तुम मेरे,
कभी न बाहर जाती।

विस्मृत अब तुम नहीं हो सकती,
बन गया ऐसा नाता।
हाँ अगर तुम मिल मुझे जाती,
तो मैं ही खो जाता।

31.12.2010

रोशनी

एक रश्मि–सी लगी मुझे तुम
दृष्टि ठहर नहीं पायी।
मन के सोये भाव जगा गयी,
ऐसी सुछवि दिखायी।

याद तुम्हारी फिर मुझे आयी,
जिसमें रहता बहता।
तुम्हें देखकर लगा मैं करने,
इस जीवन से ममता।

तुम मनोज्ञ इतनी मृदु पावन,
जिसे देख चित् कहता।
तुम्हें देखता रहूँ सदा ही,
यदि यह समय ठहरता।

उथल–पुथल जीवन ने करके
अगणित दृश्य दिखाये।
भूले कैसे दृश्य उसे जिसे,
पकड़ यहाँ तक आये।

एक तरंगिणी–सी आयी तुम,
जिसमें मन मेरा बहता।
कभी कभी वह कई तरह के,
प्रश्न भी मुझसे करता।

पर अब भी सारे प्रश्नों से
तुम दिखती हो ऊपर।
इसीलिये सौन्दर्य दिखता,
मुझे रोशनी अन्दर।

14.1.2011

स्वार्थ

स्वार्थ रिश्तों से बड़ा है,
स्वार्थ ही जब बोलता है।
आदमी तब उस समय,
रिश्ता कहाँ पर देखता है।

टूटते बनते बिगड़ते–
नाम के रिश्ते यहाँ हैं।
आदमी तो है वही,
पर आदमियत अब कहाँ है।

जी में आये जो करें,
बस इसलिये हम जी रहे हैं।
जिन्दगी को दूध की बोतल
समझ कर पी रहे हैं।

दिल नहीं है पास जिनके,
काम दिमाग से वे करेंगे।
पैर में जूता नहीं तो,
पैर लेकर क्या करेंगे।

कौन देखेगा बुझा चिराग,
जो चलता कभी था।
बल्ब की इस रोशनी में
जले भी तो क्या करेगा।

कोई भी समझेगा न वह,
फूल जो तुम कह रहे हो,
मेरे भी बस दृष्टि को तुम
सिर्फ सुन्दर लग रहे हो,

19.1.2011

अपने आप में

खो देते सामर्थ्य शब्द भी,
निकल न पाती अपनी बानी।
बेबस आत्मा की पीड़ा पर,
नेत्र बहा देते हैं पानी।

लेकिन इस खारे पानी का
जग में कोई मोल नहीं है।
बस सागर में जगह है इसकी,
धरती पर कहीं ठौर नहीं है।

जीवन में अगणित दुःख पाये,
पर दुःख का सर्वश्रेष्ठ वह पल है।
जिस दिन अपने आपसे मुझको
करना पड़ा कहीं पर छल है।

उस दिन लगा मुझे जीवन ज्यों,
बोझ एक हो गया है भारी।
किस प्रकार खुद को समझाऊँ,
सोच न पायी बुद्धि बेचारी।

वे जो नहीं समझ सकते हैं
बढ़ता हिय में क्यों स्पंदन।
ज्वालामुखी से बढ़कर के भी,
कर देता जीवन में क्रंदन।

शब्दकोश में शब्द नहीं है,
जिससे हो अभिव्यक्ति हमारी।
बस अपना ही सुख पाने में,
सिमटी मनुज चेतना सारी।

हृदय शून्य क्या समझ सकेगा,
नग्न मानवता की जो पीड़ा।
मूल्य वे क्या समझेंगे स्वेद का,
नहा रक्त जो कर रहे क्रीड़ा।

एक गरीब क्वारी कन्या की,
देखता है जब करुण कहानी।
सभ्य–शिष्ट मानव अरु पशु में,
भेद नहीं कर पाता ज्ञानी।

20.01.2011

काँटा

मैंने सोचा था जिस द्रुम तले,
बैठूँगा जब थक जाऊँगा।
देगा मुझें समीर का झोंका,
शीतलता से नहा जाऊँगा।

आतप से व्याकुल मेरे मन को,
छाया सहज प्रदान करेगा।
आने वाले थके पथिक को,
आश्रय का भी दान करेगा।

सींचा था उसे बड़े जतन से,
बूँद–बूँद संचय कर पानी।
फूल और फल लगेगा इसमें,
आयेगी जब ऋतु सुहानी।

शनैः–शनैः बढ़ते बढ़ते,
एक रोज वह वृक्ष हो गया।
निज श्रम को साकार देख कर,
खुशी से गद्‌गद हृदय हो गया।

धूप सर्दी वर्षा आँधी की,
तरु सहने की शक्ति पाया।
विलुप्त हो गयी मेरे मन से,
अब अंकुर वाली वह माया।

पर अपना तरु बोध भाव से,
मन बिलकुल से निकल न पाया।
इसी मोह में एक रोज मैं,
चला पास में उसके आया।

क्लांत हुआ मन सोच रहा था,
तरु तले आज लेट जाऊँगा।
अपने खोये हुए दिनों को,
उसे देख कर याद करूँगा।

लड़खड़ाते कदमों से चलते,
थका हुआ उस तरु तले आया।
चुभा पैर में ऐसा काँटा,
गिरा वहीं फिर उठ नहीं पाया।

22–1–11

किसी अनजान से खातिर

सुमन यदि बन नहीं सकते,
तो कोयला भी न बन जाओ।
किसी के जख्म को छूकर,
भूल कर भी न सहलाओ।

वफा यदि कर नहीं सकते,
दगा करना भी न सीखें।
किसी को भी कभी एक पल,
अंधेरे में नहीं रखें।

गिरे को न उठा सकते,
तो कंकड़ भी न बन जाओ।
भूल कर रास्ता वह ही,
दूसरे मार्ग से जाओ।

अगर मन को नहीं भाता,
साफ उसे बात बतलाओ।
अंधविश्वास मिथकों से,
किसी को भी न नहलाओ।

छोड़ सकते नहीं लालच,
तो लोभी बनकर बतलाओ।
बाजार का जो हुलिया है,
सदन में भी वह दिखलाओ।

किसी अनजान के खातिर,
तड़प उठा है हृदय मेरा।
उसे कुछ दे नहीं पाया,
यही दुर्भाग्य है मेरा।

23–1–11

अंतिम निर्णय

तुम एक मधुर संगीत–सी हो,
जिसमें मैं खोया रहता हूँ।
जिस जगह रहूँ जिस तरह रहूँ,
उस ध्वनि को सुनता रहता हूँ।

मेरी कल्पना में आती तुम,
मैं उससे बातें करता हूँ।
तुम कौन कहाँ पर रहती हो,
मैं उससे पूछा करता हूँ।

तुम लगी मनोज्ञ मधुर इतनी,
कोमल अरु सरल सर्वोत्तम कृति,
मेरे मन में प्यार उमड़ आया,
जदपि न जानता तेरी वृत्ति।

तेरा बाल सुलभ यह भोलापन,
मेरे विचार पर हुआ भारी।
बिन जान अरु पहचान के भी,
तुम लगी मुझे अतिशय प्यारी।

डरता हूँ सुनकर बात मेरी,
विश्वास तुम्हें क्या आयेगा।
इस छल प्रपंच की दुनिया में,
क्या सत्य तुम्हें दिख लायेगा।

इसलिये सोचता हूँ अब मैं,
तेरी कमियों का ज्ञान करूँ।
हृदय में उमड़े हुए प्यार को,
ताकि मैं बदनाम करूँ।

मैं आह सोचने लगा यह क्या,
जो मुझसे नहीं हो सकता है।
हे प्यार क्षमा करना मुझको,
तू तो बस मुझे समझता है।

उस भोली भाली बाला बिन,
अब मेरा मन नहीं लगता है।
मैं आज बता दूँगा उसको,
अंतिम निर्णय मन करता है।

23–1–11

तारे

पापा झिलमिल–झिलमिल करते,
चमक रहे हैं तारे।
पूरी रात घूमते रहते,
फिर थकान के मारे।

आते ही प्रभात भागकर,
सारे घर में जाते।
पता नहीं खाना भी खाते,
या जाकर सो जाते।

तारों के भी होते होगे,
अपने पिता अरु माता।
पर इनको वे नहीं रोकते,
मेरी समझ न आता।

खुद तो घर में सोते रहते,
और ये छोटे तारे।
इस सर्दी में शून्य पर घूमते,
नंगे बदन बेचारे।

तारे सहते कष्ट मगर,
दिखते फिर भी है न्यारे,
वे कैसे माँ–बाप जिन्हें तारे,
नहीं लगते प्यारे।

खुद करते आराम काम,
तारों से हैं करवाते।
छोटे–छोटे तारों पर वे,
तरस कभी नहीं खाते।

पापा यदि मेरा बस चलता,
मैं तारा बन जाती।
आसमान में जाकर–
इनके साथ खेलकर आती।

रोते रहने वाले तारे,
भी क्या कभी है हँसते।
जाते जब वे अपने घर में,
वहाँ पर कैसे रहते।

तब पापा मैं तुम्हें बताती,
और भी सारी बातें।
बड़ी जोर की भूख लगी है,
चल बेटी अब खाते।

4–2–11

झरना

जिस दिन मैं देखा झरना को,
तब से मन भी मेरा बहता है।
उसकी कल कल की ध्वनि लगता,
जैसे हर समय गूँजता है।

झरना को देखने बार–बार,
मैं इस निर्जन में आता हूँ।
आता संगीत नहीं मुझको,
पर साथ में उसके गाता हूँ।

अपनी ध्वनि में झरना खोयी,
मुझे लगा कि जैसे सोती है।
एक पल जो ठहर नहीं सकती,
वह चलते चलते गाती है।

पश्चिम से रवि की तिरछी किरण,
उसके ऊपर ऐसी छायी।
अध खुले अंग और चमक उठे,
चेहरे पर अरुणाई आयी।

संध्या ने उसका रंग रूप,
आकर के और श्रृंगार दिया।
उसकी कल कल की ध्वनि ने फिर,
मुझे लगा और स्वर छेड़ दिया।

जाना पहचाना लगा मुझे,
झरना का उस पल संगीत।
डर गया कहीं मैं झरना से,
करने तो लगा हूँ नहीं प्रीति।

ये कैसी प्रीति इस निर्जन में,
उमड़ी वह भी इस झरना से।
धीरे–धीरे मेरे कदम चले,
भयभीत हो गया संध्या से।

फिर लगा मुझे इस कल कल में,
जैसे झरना कुछ कहती है।
तुम कल आना तुम कल आना,
शायद वह मुझे पुकारती है,

झरना ही है गंतव्य मेरा,
मैं भाग न उससे पाता हूँ।
बह जाऊँगा यह जान रहा,
फिर भी बहने को जाता हूँ।

युग युग से झरना बहती है,
और सदा ही बहती जायेगी।
मैं आज खड़ा जो सोच रहा,
यह बात दोहरायी जायेगी।

तब भी होंगे पर शब्द यही,
मैं नहीं मगर मेरा दिल होगा।
इसलिये जो यहाँ खड़ा होगा,
वह भी मेरे जैसा होगा।

27–2–11

पथ

गगन में ज्यों चमक विद्युत,
लुप्त पल भर में हो जाती।
रोशनी तो नहीं देती,
रोशनी पर दिखा जाती।

रोशनी देख कर ही तो,
लगा अनुमान यह पाये।
पड़ा हूँ किस अँधेरे में,
थाह जिसकी न थे पाये।

रूप को देख कर यद्यपि,
न हम भ्रम से निकल पाये।
मगर सच है विचारों में,
नये भी मोड़ हैं आये।

सौन्दर्य देख कर मन में,
स्रोत चाहे बहें कितने।
बिना वात्सल्य में डूबे,
बिखरते जिस तरह सपने।

नहीं भ्रामक लगी मुझको,
कभी सौन्दर्य की काया।
अगर सत् हो नहीं सकती,
तो हो सकती नहीं माया।

सौन्दर्य से लिपट जलते,
निकलती जिससे चिंगारी।
नये अंकुर पनपते हैं,
रिक्त होती नहीं क्यारी।

भाव में भी बह जाने से,
बदल यथार्थ न जाता।
प्रपंचों, से बचा सौन्दर्य,
मुक्ति का पथ भी दिखलाता।

7–4–11

एक वर्ष

एक वर्ष हो गया,
माँ के बिना मुझको जीते।
अपने मन की व्यथा,
अपने ही अंदर पीते।

कहूँ किस से न आज,
कोई मेरा सम्बल है।
बिना माँ के यह जीवन,
हो गया मरुस्थल है।

होकर बीमार यदि मैं,
कभी लेट जाता था।
एक पल के लिये,
माँ को न चैन आता था।

जाने वे मेरे लिए,
क्या क्या किया करती थी।
अपने जीवन की भी,
परवाह नहीं करती थीं।

मेरे जीवन का पहला पाठ था,
माँ का आँचल।
जहाँ छिप जाता था,
जब पास में होती हलचल।

आज माँ के बिना,
जो रिक्तता दिखलायी है।
जिन्दगी भी मुझे बिखरी हुई,
नजर आयी है।

अगर जीना है तो,
अब खुद से ही लड़ना होगा।
दर्द अपने को,
अपने अंदर ही रखना होगा।

धूप से बचने के लिए,
अब न मिल सकती छाया।
बदल अब ऋतु गया,
पतझड़ का है मौसम आया।

जानता हूँ यह मगर,
फिर भी हुआ मन पागल है।
माँ के आँचल में,
सिमट जाने के लिए व्याकुल है।

आज फिर माँ की याद,
मेरे मन को आयी है।
सूनी आँखों में फिर,
तस्वीर उभर आयी है।

30–4–11

गाँवों में

अब कौन जानता शंकर को, कब भगत सिंह थे चन्द्रशेखर।
गाँवों की अब चौपालों में, गूँजता नहीं कीर्तन स्वर।
श्रीरामचरितमानस का पाठ, आये दिन अकसर होता है।
पर कौन राम यह तथ्य आज, शायद ही कोई समझता है।

जो जितना झूठ बोल सकता, वह उतना चतुर कहाता है।
लोगों को जो गुमराह करे, वह ही नेता बन जाता है।
गाँवों में चलती गुण्डों की, जिनके हाथों में लाठी है।
जो सरल बनें वे जीते हैं, जैसे गदहे की काठी है।

यह लोकतंत्र ही हुआ भ्रष्ट, अब गुण्डा तंत्र दिखाता है।
गुन्डों को किये बिन नमस्कार, गाँवों में न कोई टिक पाता है।
जो चुगली झूठ बोल कर के, नित गड्डा खोदा करता है।
दुर्भाग्य से यदि निर्दोष गिरा, उपहास का पात्र वह होता है।

अब कोई देख नहीं पाता, सच होता जो अपने अंदर।
सब लोग देखते लिपस्टिक को, चेहरे दिखते सारे बदतर।
दो तीन लोग जहाँ पर बैठे, बातें प्रपंच की करते है।
जो विवश उसी का कर मजाक, गरीब पर ही सब हँसते हैं।

नारी जो चपल चंचला है, हँस हँस करके बतलाती है।
आचार न हो जिसमें विचार, सम्मान आज वह पाती है।
शक्ति की सदा चलती आयी, पर यह तस्वीर निराली है।
समाज उसे देता सम्मान, निर्बल को जो देता गाली है।

हर तरफ दिखावा आडम्बर, गाँवों में अक्सर होता है।
जो लूट सके जितना धन को, आदर का पात्र वह बनता है।
धन आये काला या सफेद, निश्चित इज्जत बढ़ जायेगी।
धन की सरिता में बहने से, काया निर्मल हो जायेगी।

26–6–11

शिकवा नहीं

उसने मुझे लूटा मगर,
फिर भी मुझे शिकवा नहीं।
वह खुश रहे मेरी दुआ,
मेरा तो कुछ अपना नहीं।

मैं हो गया बदनाम हूँ,
एक रोज जब वाकिफ हुआ।
किसने किया देखा उसे,
उस रोज था ताज्जुब हुआ।

अपना पराया कौन है,
यह भेद न सुलझा कभी।
आया यहाँ था किसलिये,
यह प्रश्न ज्यों का त्यों अभी।

दुनिया में कितने लोग हैं,
दिखाते जैसे वैसे नहीं।
कपड़ों पर उलझी दृष्टि यह,
अन्दर तलक जाती नहीं।

किस से कहूँ जो दिल में है,
इतबार आयेगा नहीं।
अब व्यस्त इतने लोग हैं,
एक पल की भी फुरसत नहीं।

अब शब्द बन कर रह गया,
बस प्यार केवल नाम है।
लेकर सहारा प्यार का,
मानव बनाता काम है।

26–6–11

वर्षा

आती जब ऋतुओं की रानी,
बरसता रिमझिम रिमझिम पानी।
हरयाली हर तरफ दिखाती,
नव उमंग मन में उपजाती।

सर सरिता नाले इठलाते,
मगन झूमते मंगल गाते।
घन रव सुन कर मोर चहकते,
होकर मस्त नाचने लगते।

पंक्ति बद्ध हो बगुले उठते,
हार घनों का जैसे लगते।
तान छेड़ रहे दादुर झींगुर,
गूँज रहा संगीत मनोहर।

शाम हुई जुगनू झिलमिलाते,
सजे वृक्ष लड़ियों से दिखाते।
गगन में आतिशबाजी होती,
सहम धरा उस पल है जाती।

गरज कर बादल भय उपजाता,
फिर भू को नहलाता जाता।
नहा कर ही यह धरती सजती,
अपने प्रिय की सजनी लगती।

जिसे देख कर मन उमगाता,
रहूँ देखता जी में आता।
संकुल नहीं दृष्टि हट पाती,
वर्षा जब तुम सामने आती।

27–7–11

आजादी का दु:ख

गुण्डों को सिर झुकाना, जीना है तो जरूरी।
सुनता नहीं प्रशासन, लोगों की क्या मजबूरी।
भारत के गाँवों में अब, गुण्डों का राज चलता।
ये कैसी है आजादी, हर तरफ धुन्ध दिखता।

जो जी में आये करते, जिनके हैं पास ताकत।
कोई बोल दे तो उसकी, आ जायेगी फिर शामत।
खेतों में मेड़ काटें, रोकें जहाँ चाहे रास्ता।
डी.एम. नहीं गुण्डों का, भारत में हुक्म चलता।

चौराहे पर मार देते, लोगों को गुण्डे गोली।
जो बनता है गवाही, वह चलता जैसे होली।
गुण्डों के भय से लोगों, के मुँह में लगा ताला।
गाँधी का आज भारत, गुण्डों का है रख वाला।

कानून साक्ष्य चाहता, जो न उसे मिलेगा।
गरीब का ही शोषण, दिन प्रति दिन अब बढ़ेगा।
उम्मीद न्याय की अब, इस देश में बेमानी।
रिश्वत के बिना मिलता, माँगे न आज पानी।

एक से एक बढ़ कर, गुण्डे यहाँ उपजते।
सब से बड़ा जो गुण्डा, उसकी जयति सब करते।
कानून भी वही है, मलिक भी है हमारा।
इस देश के सब गुण्डों, तुमको नमन हमारा।

फूलो फलो इसी तरह, संविधान ही खा जाओ।
तुम जिसको चाहो रखो, चाहो जिसे मिटाओ।
संकुल की विवशता है, गुण्डों को सिर झुकाना।
इस देश में कठिन है, इंसाफ आज पाना।

नेता पुलिस अधिकारी, सबको है प्राण प्यारा।
सत् पर चलना जोखिम है, यह जानता जग सारा।
किस पर करें भरोसा, दिखता नहीं सहारा।
आजादी के इस दुःख से, रोता हृदय हमारा।

कानून न्याय की नहीं, शक्ति की जीत होती।
पशुता निखरती नर की, विवेकशीलता प्रतिदिन घटती।

9—7—11

श्रेष्ठ रिश्ता

दुनिया के सारे रिश्तों में, श्रेष्ठ वह है रिश्ता ।
निर्माण देह से नहीं, आत्मा से जिसका होता।

वह रोक देता बहती, स्मृतियों की धारा।
वह सामने हो तो फिर, जग भूल जाता सारा।

देह से बने रिश्तों का, विकास करती बुद्धि।
रिश्ते न स्वस्थ रहेंगे, हो न अगर शुद्ध बुद्धि।

रिश्ते बनें चाहे जैसे, मन में मगर वे बसते।
जो मन को मोह लेते, सुन्दर वही हैं रिश्ते।

मेरा जो उसमें रिश्ता, यद्यपि नहीं दिखाता।
पर मेरे सूने मन को, झकझोर तो है जाता।

चाह है उसे पकड़ लूँ, जिसकों नहीं पहचाना।
पर क्या वह जानती है, जो मेरे मन ने माना।

वह जाने या न जाने, मैं याद उसकी करता।
अज्ञात नाम उसका, मैं नाम न रख सकता।

शायद कभी समझ ले, संकुल की वह मजबूरी।
उस रोज स्पर्श करके, हर लेगी पीड़ा मेरी।

13—7—11

चाँद

स्वच्छ बितान में चाँद हो तो, बन जाती रात सुहानी।
मंजिल का हो बोध मार्ग में, तब कैसी परेशानी।

देखता हूँ चाँद जब, मन में नयी स्फूर्ति आती।
दिन भर जो गर्मी सतायी, भूल उसकी याद जाती।

देख चन्द्र की मनोज्ञता, चंचलता मन की रुक जाती।
अगर लगी हो कहीं भी स्याही, ज्योत्स्ना ले उठा जाती।

जगत में चाँद–सा सुन्दर, नहीं कुछ और दिखलाया।
रोशनी तो दिखाता है, चाहे उधार ही लाया।

चन्द्र बदलते तुम सदा, प्रतिदिन हो आकृति।
असली नकली क्या कहूँ, हो रही बुद्धि विकृति।

कुछ भी हो फिर भी चमक, चाँद जहाँ से लाते।
बता न तुम पाये कभी, रह गये हम छटपटाते।

देख पाऊँगा उसे क्या, उमड़ चाह यह जाती।
रात पूर्णिमा की जब तुम पर, दृष्टि हमारी जाती।

लगता तुम्हें देखने जब मैं, हो जाता निष्काम।
यही कामना है संकुल की, तुम दोगे विश्राम।

22–7–11

खद्योत का प्रकाश

चमक है खद्योत में,
पर रास्ता न दिखा पाती।
रोशनी के बोध का,
अनुमान पर जाती करती।

मानता हूँ बुद्धि मेरी,
तथ्य वह न खोज पाती।
मुग्ध कर लेती क्यों मन को,
जब कहीं भी नजर आती।

जान पाया यह न कारण,
किन्तु जो अनुभव में आता,
इस चमक के अर्थ का तब,
अर्थ मैं अपना लगाता।

सोच तो बस सोच है,
बाँधा नियम में जा न सकता।
देखता कोई किस तरह है,
दृष्टि वह अपनी ही रखता।

किन्तु मैं यह चमक लख कर,
कुछ समय तक ठहर जाता,
एक बचती चाह,
सारी कामना से निकल जाता।

दृष्टि से होती जब ओझल,
खोज की इच्छा जगाती।
जान पाया न जिसे,
संकुल उसी की याद आती।

29–7–11

यादें

हे वक्त तुम्हें लौटा लाना,
यह नहीं हमारे बस में है।
पर तुम भी छीन नहीं सकते,
यादें जो रहती मन में हैं।

मानता कि धुँधली हो जाती,
पर वायु कभी जब चलती है।
उड़ जाती जमी धूल सारी,
यादें फिर दिखने लगती हैं।

यद्यपि उन्हें पकड़ नहीं सकता,
पर पास एक दम आ जाती।
उर का स्पर्श कर लेती है,
पर आँखें नहीं देख पाती।

फिर ऐसा लगने लगता है,
जैसे हमें कुछ मिल जाता है।
तन में स्फूर्ति नयी आती,
बदला हुआ दृश्य दिखाता है।

जिसकी यादें होते सजीव–
मन में उमंग आ जाती है।
वह कैसी होगी कहने की,
फिर बात कहाँ रह जाती है।

उसके सम्मुख सारी निधियाँ,
संसार की फीकी पड़ जाती।
वह पास हो तो कामना कोई,
मन में न कभी ठहर पाती।

29–10–11

खोज रहा हूँ

कलियुग के तेज से दीप्तमान,
धर्म
कलियुग के पास आया
शीश नवाया
कलि मुस्कुराया
धर्म तुम्हारा हुलिया
बहुत भाया
कहो सब खैरियत है
मेरे राज्य में कहीं
तुम्हें लगी तो नहीं बोरियत है
तुमने और भी तीन युग देखे
पर मुझे अच्छी तरह है याद
नहीं बदला तुमने भेष
पर आज
तुम्हारा यह अलौकिक रूप
देवताओं को हतप्रभ कर दिया
इन्द्र की सभा में मैं भी था गया
स्वयं सुरेश ने
तुम्हारी प्रशंसा किया
बैठो,
खड़े क्यों हो ?
धर्म ने धन्यवाद कहा
आसन ग्रहण किया
कलियुग का वंदन किया
फिर उत्तर दिया

हे महाबाहु!
आज धरती पर आप की जयकार है,
मैं एक हूँ
हाँ मेरे नाम अनेक हैं
हिन्दू मुस्लिम सिख इसाई और और
मगर मजे की बात यह है
लोग मुझे नहीं
मेरा भेष पहचानते हैं
आप भी तो भ्रम में पड़ गये
मेरे इस नये भेष को देखकर
फिर ये मानव
जिनके अन्दर से नहीं निकल पाया
दानव
वे मुझे कैसे पहचान पायेंगे,

धर्म की बात सुनकर कलियुग झेंप गया
फिर बोला
लोग मुझे बदनाम करते हैं
अन्य युगों को मुझसे श्रेष्ठ कहते हैं
लोग जानते नहीं
सिर्फ मानते हैं
जो सुनते हैं,
सुनाते वे हैं
जो बुद्धिमान हैं
यही सोचकर

पहली बार
मैंने भेष बदला है
पर मैं नहीं बदला हूँ
कलियुग हँस पड़ा
तुम प्रत्यक्ष को झुठला रहे हो,
मेरा प्रभाव दिग्–दिगन्त में व्याप्त है
ऐसा क्या है संसार में
जिसका सौदा नहीं किया है
रिश्तों का अलग–अलग अर्थ है
परन्तु कभी कभी
रिश्ते हो जाते व्यर्थ हैं
धर्म तुमने जो नियम बनाये
सच बोलो आज कहीं नजर आये
आज का सच सिर्फ इतना है
जिसमें शक्ति है
वही ठहरता है
कमजोर मिटता है
सत्यमेव जयते हुआ व्यर्थ नारा है
मानव बस्ती में अब भी,
जंगल का राज चलता है
धन ही श्रेष्ठ है
सारे अवगुणों को मिटाता है
जिसके पास धन है
वही पूजा जाता है
क्या तुम इसे नहीं मानते
धर्म ने सर पर हाथ फेरा
मेरी बात सुनकर दर्द बढ़ गया

शायद तुम ठीक कहते हो
धर्म ने लम्बी साँस ली–

यह प्रकृति भी
उसी को दंड देती है
जो कमजोर होता है।
यह बात मुझे अखरती है
तब निराशा घेर लेती है
परन्तु हे सर्व शक्तिमान कलियुग
इस युग में भी एक सत्य
जिसे मिल जाता है
वह विचलित नहीं होता
उसका नाम है
प्यार–
कलियुग गम्भीर हो गया
प्यार
मैंने भी सुना है
मुझे भी उसकी तलाश है
अब धर्म हँसा
आप को भी
हाँ हाँ हाँ.......
तुम्हें विश्वास नहीं होता
होता है,
क्योंकि मैं भी खोज रहा हूँ
प्यार........।

13–10–11

आकृति

बादल जो बना देते आकृति,
वह कुछ पल में मिट जाती है।
लेकिन उसकी स्मृति मन से,
बिलकुल न कभी मिट पाती है।

ठहर जाता जब चौराहों पर,
दिशा का ही भ्रम हो जाता है।
द्विविधा हर तरफ घेर लेती
जीवन का सच न दिखाता है।

सब अस्त व्यस्त टेढ़ा मेढ़ा
उलटा सीधा दिखलाता है।
इस स्थिति में उस आकृति का,
तब ध्यान मुझे आ जाता है।

वह बादल की धुँधली आकृति,
तब मानस में बन जाती है।
खामोश जिसे देखा नभ में,
वह मानस में मुस्कराती है।

आश्चर्य हुआ मुझको भारी,
पूछा मैं क्यों मुस्कराती हो।
तुम स्वयं को न पहचान सके,
औरों से आस लगाते हो।

जो पास तुम्हारे औरों से,
क्यों उसे चाहते हो पाना।
जो अपने आपमें खो जाये।
वह होता सच्चा दिवाना।

तुम जिसे खोजते आज तलक,
जग में मुश्किल उसको पाना।
मैंने पूछा मेरी खोज को क्या,
कल्पना मात्र तुमने माना।

नन्हीं नन्हीं मगर न जरूरी है,
हर खोज का अंतिम सत्य है क्या।
इस तरह भी जीकर के देखो,
छोड़ो पर्दे के पीछे क्या।

स्यात् अगर मैं ऐसा कर पाता,
जैसा कि तुम समझाती हो।
तो याद तुम्हारी भी अब तक,
जाने कब की ही खो जाती।

उसके नेत्रों से टपके अश्रु
मेरे केशों में समा गये।
बरसने लगे सचमुच बादल,
मेरे तन मन को भिगो गये।

14–10–11

केन्द्र

देह की आसक्ति से मन,
मुक्त हो सकता नहीं है।
प्यार बन सकता है साधन,
साध्य हो सकता नहीं है।

अपनी कमी पूर्ति करने के लिए,
हम प्यार करते।
प्यार में पूर्णत्व है,
यह बात हम भी हैं समझते।

समझ कर भी क्या हुआ,
यदि क्रियान्वयन कर न पाये।
दो कदम आगे बढ़े,
उस पर भी तो न ठहर पाये।

देह का बंधन वचन–
कड़वे दो सुनकर टूट जाता।
क्रोध जब करतब दिखाता,
प्यार तब कहाँ नजर आता।

कल तलक जिन बाहों में,
पूर्णत्व का अनुभव था पाया।
जब घृणा में उर जलाया,
प्यार तब कुछ कर न पाया।

जिससे सुन्दर और कोई,
न कभी जग में दिखाया।
देखकर जिसको हृदय में,
प्यार का पौधा उग आया।

वृक्ष बनने से ही पहले,
सूखता जब नजर आया।

दूसरे का दोष दे,
निर्दोष अपने को बताया।

प्यार तो बस प्यार है,
वह स्वार्थ से जुड़ता नहीं है।
स्वार्थ को छोड़े बिना,
कोई प्यार पा सकता नहीं है।

है बहुत मुश्किल जगत में,
स्वार्थ अपना छोड़ पाना।
इसलिये संसार में दुर्लभ,
दुरह है प्यार पाना।

तो फिर क्या बेकार है,
इस प्यार से उम्मीद करना।
यदि न मंजिल ही मिली,
तो व्यर्थ होगा प्यार करना।

मैं तो बस इतना कहूँगा,
प्यार न कभी व्यर्थ जाता।
रास्ता देता दिखा,
हमको नहीं चलना ही आता।

देह के इस प्रेम का,
जो केन्द्र ही न खोज पाता।
वह परिधि पर ही भटक कर,
जिन्दगी का अर्थ पाता।

केन्द्र तक जो पहुँचाता,
उसको नहीं आहट सुनाती।
प्यार ही बस प्यार होता,
राह न आगे दिखाती।

18–10–11

प्यार करते रहना

होकर के पास कोई दिल के न पास होता।
कोई दूर होकर के भी दिल से न दूर होता।।

छू लेता है जो दिल को दिल के समीप आता।
आँखों के रास्ते कोई दिल में न उतर पाता।।

देखो ठहर कर जब भी मिले प्यार का धरातल।
सोचो किया सफर जो ले जायेगा क्या मंजिल।।

यदि कर न सकते ऐसा तो प्यार करते जाओ।
वह देगा तुमको उत्तर पर खुद को न छुपाओ।।

अहसास जरूर होगा राही प्यार के पथ चल कर।
धरती पर कुछ नहीं है इस प्यार से कभी बढ़कर।।

मंजिल तक रास्तें को, रोशन यह प्यार करता।
संकुल बस जिन्दगी में, सदा प्यार करते रहना।।

23–10–11

ऋतुराज आ रहा है

पैगाम सुख का देता ऋतुराज आ रहा है।
देखो जिधर उधर ही उल्लास छा रहा है।।

नीला गगन मगन है क्या श्यामता निराली।
आपस में चूम चूम कर कहती लता अरु डाली।।
भू पर बसे मनुष्यों सृष्टि के श्रेष्ठ प्राणी,
यह कालिमा तुम्हें क्यों लगती है इतनी प्यारी।
परोपकार इस जहाँ से अब लुप्त हो रहा है।
पैगाम सुख का देता ऋतुराज आ रहा है।

शीतल पवन सभी को बिभोर कर रही है
सूरज की स्वर्ण रश्मि में क्या भेद कर रही है।
फूलों से सजी भूतल दुल्हन–सी लग रही है,
स्वागत बसन्त ऋतु का प्रकृति कर रही है।
जन से मिलते जन जब उत्साह खो रहा है।
पैगाम सुख का देता ऋतुराज आ रहा है।

नव वस्त्र धारण करके प्रकृति है इठलाती।
प्रियतम के आगमन पर है मौन कुछ शरमाती।
मधुकर हैं गीत गाते सुमनों के पास आकर,
सोये हुए अरमानों को छू रहे जगाकर।
कोकिल का स्वर जहाँ में अब मौन हो रहा है,
पैगाम सुख का देता ऋतुराज आ रहा है।

नव जागरण को पाकर प्रकृति हँस रही है,
छोटी छोटी अमियाँ तरुओं में दिख रही हैं।

पक्षी बड़े लगन से निज घोंसला बनातें,
आने वाले की खुशी संगीत मधुर गाते।
मुझको तो आज शिशु भी सहमा दिख रहा है,
पैगाम सुख का देता ऋतुराज आ रहा है।

जलती जहाँ थी होली खाई लगी हुई है,
फागुन जहाँ थे गाते बिल्डिंग बनी हुई है।
होली की छेड़खानी भाभी कोई न करती,
बैठो यहाँ पर भैया दादी कोई न कहती।
सबमें भरा है आतंक विश्वास रो रहा है।
पैगाम सुख का देता ऋतुराज आ रहा है।

होली पर अब सहेली मिलने न मेरी आती।
बालायें गा–गा कर ऋतुराज न बुलाती।
भाई से आज बहना सहमी हुई खड़ी है।
पति से लड़कर नारी पीहर में जा पड़ी है।
भाई से आज भाई कतरा कर जा रहा है,
पैगाम सुख का देता ऋतुराज आ रहा है।

अमीर आज प्रतिदिन अमीर होते जाते
गरीब थक चुके हैं इस लाश को चलाते।
दुनिया में उनकी चलती जिनके है पास शक्ति।
पैसों से आज होती भगवान् की भी भक्ति।
कलियुग का आज ईश्वर भी घूस खा रहा है।
पैगाम सुख का देता ऋतुराज आ रहा है।

दुनिया है व्यापार

दुनिया है व्यापार यहाँ हर माल बिकाऊ है।
फैशन के इस दौर में कुछ भी नहीं टिकाऊ है।।
पल पल में ही बदल रही है अब लोगों की बोली।
सच्चाई बस बची है इतनी जैसे तन पर चोली।।
सही गलत का निर्णय जग में होता आज नहीं है।
होती उसकी हार कि जिसमें ताकत आज नहीं है।
ऐसा है यह वक्त इसकी रफ्तार निराली है
अग्र पंक्ति में खड़े कि जिनकी नीयत काली है।।
दुख होता इस बात का जो समाज प्रचेता है।
सबसे ज्यादा आज वही मुँह दिखी बताऊ है।। दुनिया है व्यापार.....
विश्वास करें अब किस पर किससे उम्मीद लगाये।
जिनको हम अपना समझा वे ही हो गये पराये।।
हर तरफ ही आग लगी है कहीं तन जलता कहीं दिल है।
सब खाक हो चुका लेकिन आँखें अब भी न खुली हैं।।
कैसी विकास की आँधी जिसमें लाशें बिकती है।
इस सभ्य समाज में आये दिन नग्नता नाचती रहती है।।
होता है अफसोस सोचकर कौन यकीन करेगा।
अब भी जंगलराज यहाँ पर सत्य छिपाऊ है।। दुनिया है व्यापार.....
जन्मभूमि जननी को मिलता अब पहला स्थान कहाँ है।
सुन्दरता का अर्थ बदल गया आँचल में अब छाँव कहा है।
गाँव वही बदली पगडण्डी पीपल है पर छाँव कहाँ है।
जनक दादी चाचा भाई सब पर दिल में अब ठाँव कहाँ है।
ऐसी चकाचौंध यह जिसमें मलते ही हम आँख रह गये।
उड़े पड़ोसी पंख लगाकर मेरे ऊपर बीट कर गये।।
मैं कुछ बोलूँ इससे पहले पागल मुझे बनाया।
सच है आज चतुर वह है जो बात बनाऊ है।। दुनिया है व्यापार..........

दुनिया में अब नहीं रही चौरासी लाख योनी।
होती है हर रोज यहाँ कैसी कैसी अनहोनी।।
फिर भी नहीं समझता मानव है इतना मतवाला।
जनक और तनया का रिश्ता आज हो रहा काला।।
पूर्वानुमान मौसम का है अब आसान लगाना।
सही सलामत निकल कर घर से मुश्किल वाापस आना।।
इंसानियत का भाव बढ़कर हुआ है इतना उच्चा।
मूल्य हो गये बौने रिश्ते हुए दिखाऊ हैं।। दुनिया है व्यापार...............
दुनिया में रहें हम जब तक मुस्कान न मिटने पाये।
चिरनिद्रा पास जब आये तब हँस कर गले लगाये।
ऐसा कर्म करें कि जिससे न पड़े न कभी पछताना।
कभी–कभी सोच यह भी लें क्या साथ मेरे है जाना।।
यह चिन्तन रहे यदि मन में नहीं होगी द्वेष से ममता।
मानव होने का मतलब विकसित कर ले यह क्षमता।।
कहता अंतिम बात सपन पर मुग्ध न हो जाओ।
है असत्य संसार सारा ब्रह्माण्ड मिटाऊ है। दुनिया है व्यापार.....

12.1.2008

प्रेमिका ने

प्रेमिका ने प्रेमी से पूछा
तुम मुझे कितना प्यार करते हो
प्रेमी बोला जितना सागर में जल है
प्रेमिका बोली वह तो कम है
क्योंकि पृथ्वी पर सागर है
महाभारत में माँ पृथ्वी से विशाल है
फिर आपके प्रेम का क्या मिशाल है
प्रेमी बोला मुझे पता है
माँ पृथ्वी से विशाल है
इसलिये ठुकरा चुका हूँ
पिता का स्थान आकाश से ऊँचा है
इसलिये नीचे गिरा चुका हूँ
छोड़कर उनको यहाँ तक आया हूँ
यह मेरे प्रेम का क्या कम मिशाल है

प्रेमिका बोली मैंने भी बहुत त्याग किया है
इतनी सर्दी के बावजूद
आप की खुशी के लिए
सिर्फ आन्तरिक वस्त्र पहन रखा है
परन्तु मैं पुरुषोत्तम मिश्र संकुल
प्रभु से प्रार्थना करूँगा
शीघ्र ही वह दिन आये
जब यह आन्तरिक वस्त्र भी उतर जाये
मानव जहाँ से चला था
वहीं पहुँच जाये –

शुद्ध विचार

सब कुछ पाकर अगर न पाये
मन में शुद्ध विचार
तो जीवन हो जाता निस्सार,
जाने कितने सपन संजोए
आश यही पूरी हो जाये
पर सब हैं लाचार
बिना रव होती नियति की मार
यही अवलम्बन अरु आधार
बस अपने मन के शुद्ध विचार।

सुख दुःख जीवन और मरण को
समय नहीं देखा करता
सब कुछ यहाँ बदल जाता है
कुछ भी न स्थिर रहता
वादे करते साथ में चलते
पर कब रुकते नहीं पता
अपने ही सुख को जीवन में
करते सब साकार
यहाँ नहीं कोई किसी का यार।

जीवन एक स्वयं दर्पण है
जो चाहो वह देखोगे
व्यर्थ दोष दूसरे का देना
सीखो अपने बिष को पीना
जीना है तो मेरी मानो
पहले अपने आप को जानो
यहाँ सब फर्जी
स्वार्थ खुदगर्जी
कभी किसी से अपना क्रन्दन
करना है बेकार।

प्यार की क्या परिभाषा है
विभाजन यहाँ विचारों का,
सही लापता जो चाहा कहा
अलग अलग हैं राग
बस यह ही जीवन दर्शन है
आदमी यहाँ मुसाफिर केवल
फिर क्यों पकड़ रहा है उसको
जिसको कोई पकड़ न पाया
कुछ पल तो यह भी तो सोच लो
क्या है जगत में सार।

आज का भारत

आजादी से पहले देखा जाता था जो सपना।
हुआ न वह साकार आज भारत है कहाँ ये अपना।।

अब तो इसे इंडिया से, दुनिया में जाना जाता है।
सौन्दर्य प्रतियोगिता आयोजित कर, नारी को बेचा जाता है।।
जिस देश में पैदा हुई थी लक्ष्मीबाई चाँदबीबी दुर्गा।
उस देश में नारी अंग दिखा टीवी प्रचार करता मुर्गा।।
जिस राष्ट्र प्रेम पर चन्दन को कुर्बान कर दिया था पन्ना।
उस राष्ट्र की नारी ने फैशन अब बना दिया पति तक अपना।।
अब खुले आम चौराहों पर ओठों को चूमा जाता है।
अंग्रेज गये पर भारत का हर शहर ही पेरिस लगता है।।
सोना साबुन या बिस्कुट हो, हो क्रीम पाउडर या बेल्ट।
नारी मुस्कान बिना टीवी करता प्रचार न चाकलेट।।

बन वस्तु गयी आज की नारी फिर आरक्षण से क्या होगा।
क्या आरक्षण दे सकता है नारी का है जो हक अपना।।

आरक्षण की बैशाखी पर जब तक देश चलता रहेगा।
समता सर्वोदय सबको न्याय यह नारा बन कर ही रहेगा।।
कोई भी जाति कोई भी धर्म जो पीड़ित हो इस भारत में।
होगा पहले उसका उत्थान संकल्प यही लें हम मन में।।
नैतिकता जिनमें शेष नहीं उन पर क्या करें भरोसा हम।
सरकार बदल देने से भी होगा यह भ्रष्टाचार न कम।।
मंत्री अफसर अरु कर्मचारी बन जोंक पी रहे माँ का रक्त।
हर तरफ घोटाला रिश्वत है बह रहा निर्दोषों का ही रक्त।।

कानून खरीदते नोटों से लाठी से राज्य चलाते है।
सच्चाई पर जो चलते हैं सूली पर टाँगे जाते हैं।।

आयी कैसी यह आजादी जीना दुश्वार गरीबों का।
दस रुपया किलो अगर आटा भर सकता पेट नहीं अपना।।

यह युग है आज मिलावट का हर तरफ दिखावा दिखता है।
नेता में पहले देश प्रेम अब पैसा प्रेम दिखाता है।।
हर तरफ लूटते जनता को भारत सरकार के कर्मचारी।
कोई भी विभाग नहीं बाकी जिसमें निष्ठा हो ईमानदारी।।
आयी कैसी यह आजादी अपने ही वतन में बेगाने।
बेटा अरु बहुएँ देती हैं माँ बाप को ही अपने ताने।।
अपनी बहिना से प्यारी अब, भाई को लगती साली है।
माँ बाप बन गये सास ससुर बाकी रिश्ते सब जाली है।।
वृद्धों के लिए वृद्धाश्रम भारत सरकार बनायेगी।
बढ़ रहे विदेशी कर्जे से यह नाव कहाँ तक जायेगी।।

चिंता न राष्ट्र की करते हैं भारत के मंत्री अधिकारी।
ऋण ब्याज चूकाने को ऋण ले सीखा है मौज मस्ती करना।।

भारत में बड़ी विषमता है शोषण जनता का उत्पीड़न।
तीन प्रतिशत लोग ही करते हैं सत्तानबे के ऊपर शासन॥
होता गरीब प्रतिदिन गरीब ऐसी बन गयी व्यवस्था है।
झूठे आश्वासन देने की नेताओं को बड़ी आस्था है॥
कहीं धर्म जाति कहीं भाषा से लोगों को लड़ाया जाता है।
जनता को कर गुमराह सत्य को सदा छिपाया जाता है॥
दुनिया की यह सच्चाई है एक वर्ग गरीब एक है अमीर।

इसके अतिरिक्त मानव में, अन्तर की न कोई तस्वीर॥
मानव सामाज के दो स्वरूप एक शोषक है एक शोषित है।
इनमें समानता लाने को हमारा संविधान सुनिश्चित है।।

लेकिन इसको दुर्भाग्य कहे संविधान कागजों पर केवल।
चलती है केवल शक्ति की अथवा सत्ता जिसका अपना।

आजादी के तिरसठ वर्षों में देश बहुत आया आगे।
कुछ फुट पाथों पर सोते हैं कुछ बहुत निकल आये आगे।।
सम्मान अरु पैसा पाती है कुछ नारी वस्त्र उतारने से।
कुछ वस्त्रहीन सर्दी सहती मजबूर है जीवन जीने से।।
जीवन के अब गये मूल्य बदल, गयी बदल नैतिकता परिभाषा।
गंगा ही आज प्रदूषित है अब किससे करें मुक्ति आशा।।
जब से आयी यह आजादी, यदि बढ़ी तो केवल आबादी।
अपराध बढ़े चोरी हिंसा अफरा–तफरी अरु बरबादी।
एक बार जिसे मिलती कुर्सी उसको फिर कुछ न दिखाता है।
वह बाथरूम भी कुर्सी को ही साथ में लेकर जाता है।

कुर्सी में ही है ऐसा नशा जिसे मिली वह धन्य हो जाता है।
जाता फिर भूल वह धरती को देखता स्वर्ग का ही सपना।।

❑❑❑

अनूठा रंग

इस रंग बिरंगी दुनिया में एक रंग अनूठा होता है।
जो एक बार यदि लग जाये फिर कभी नहीं वह मिटता है॥
हर क्षण हर पल फिर उस रंग की मन पर छायी रहती लाली।
वह रंग न हो तो लगता है जैसे सारी दुनिया जाली॥

आती तरकीब काम न कुछ जिससे रंग को धूमिल कर दें।
उस रंग से ध्यान हटा करके कैसे मन को उज्वल कर लें॥
लगता उस रंग में रंगा हुआ मन रहेगा जब तक यह तन है।
निर्माण न हो सकता वह रंग यह बात जान गया अब वह है॥

है रंग भी क्या तुम जनोगें मन की मेरे क्या हालत है।
तुमने मेरा हर लिया रूप यह बात केवल हम जानत है॥
रंग तुम में रंग मेरे मन ने, अपना अस्तित्व मिटाया है।
पर तुम जैसा बन कर के मन, मुझकों यह आज दिखाया है॥

है रंग अनूठे नहीं जान पाया कब तुम मुझ पर छाये।
दर्पण में जब देखा खुद को, अपना ही रूप नहीं पाये॥
मैं जैसा भी हूँ मुझे भूल हे रंग सदा तुम ऐसे रहो।
अपनी सुन्दरता से जग में जो कभी उसे भी भरते रहो॥

30.12.2010

तेरी एक मुस्कान के ही सहारे

तेरी एक मुस्कान के ही सहारे,
मैं जीवन के विष को पिये जा रहा हूँ।
तड़प दर्द आत्मग्लानि का चषक पीकर,
बताना कठिन स्वाद इस जिन्दगी का,
कहीं न ठिकाना भटकता हूँ दर दर,
गगन में कोई अभ्र का जैसे टुकड़ा।
तुम्हें देखा तबसे हूँ उर में छुपाये।
सपन के जगत में जीये जा रहा हूँ। तेरी एक........
कदाचित जगत में न तुम जन्म लेती ।
तो मेरा भी जीवन मरुस्थल ही होता।
नहीं जानता होती क्या मुस्कुराहट।
अकिंचित हृदय में नहीं होता कंपन।
तुम्हें देख कर मैं नये भाव लेकर,
चुभे शूल उर में सहे जा रहा हूँ। तेरी एक...........
तुम्ही ज्योति जीवन मेरी प्रेरणा हो,
तुम्हीं मेरी पूजा तुम्ही साधना हो।
मेरी आत्मा को मिली जो है राहत,
तो है राज इसका तुम्हारी ही चाहत।
तुम्हें देखकर भूल जाता हूँ खुद को,
बना शाप जीवन जिये जा रहा हूँ। तेरी एक.........

❑❑❑

हृदय

चिरैया के दो प्यारे बच्चे, सुन्दर सरल हृदय के सच्चे।
नीड़ में चीं–चीं चूँ चूँ करते, देखने वाले का चित् हरते।
धीरे–धीरे लगे वे बढ़ने, लगे प्रयोग बुद्धि का करने।
मातु–पिता ने जो सिखलाया, आसपास जो अन्य से पाया।

एक दिन जब उनकी माँ आयी, बच्चे थे कर रहे लड़ाई।
बच्ची ने कारण बतलाया, सुनकर माँ का दिल घबराया।
नेत्रों में आँसू भर आये, बचपन के दिन लौट ज्यों आये।
प्यारी बिटिया जो तुम कहती, मैं भी माँ से थी यह पूछती।

माँ भी माँ की बता बताती, नहीं कोई उत्तर दे पाती।
हे पुत्री मेरा मन कहता, समझेगा जो हृदय की रखता।
तुम दोनों में कोई न अन्तर, न कोई श्रेष्ठ न कोई निम्नतर
न्याय नहीं जो यह सिखलाये, एक उड़े एक बँधा जाये।

मुक्त गगन हम उड़ न पायें, अपने मन में ही गुनगुनायें,
व्यथा समझ कौन मेरी पाया, जिसके जो मन आया गाया।
अब भी राग वही है बजता, चाहूँ बदले नहीं बस चलता।
जिसने कलम अरु पायी शक्ति, अपनी रहा करता भक्ति।

होकर स्वार्थबद्ध नियम बनाये, ईश्वर नाम की मुहर लगाये।
अब तुम दोनों मेरी मानो, सदा बिहंग स्वयं को जानो।
नभ में विचरण करो तुम निर्भय, अंधकार की बंद करो जय।।

6.3.2012

भगवान कभी नहीं कह सकता

भगवान कभी नहीं कह सकता, हम भेद करें इंसानों में,
जो भेद करे इन्सानों में, इन्सान नहीं वह हो सकता।
वह पंडित मौलवी ज्ञानी या, पादरी और भी हो सकता।
जो धर्म का ठेकेदार बने, इंसान नहीं वह हो सकता।
नेत्रों से बहते आँसू की, जो समझ नहीं सकता भाषा,
पर पीड़ा से जो द्रवे न हिय, इन्सान नहीं वह हो सकता।
प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा हम, जिसमें अन्तर नहीं कर सकते।
विज्ञान ज्ञान जो झुठलाये, इंसान नहीं वह हो सकता।
ये धर्म जाति भाषा सीमा, मकान के मानो कमरे हैं।
कमरों को जो न घर समझे, इंसान नहीं वह हो सकता।
वास्तविकता तो वास्तविकता है, नहीं उसे छिपा कोई सकता,
अहसास जो यह न कर पाये, इंसान नहीं वह हो सकता।
संसार का सत् तो एक ही है, ईश्वर अल्ला गुरु गॉड कहो,
जो इतना भी न समझ पाये, इंसान नहीं वह हो सकता।
मानवता से जिन्हें धर्म जाति, आलोक से तम लगता प्यारा।
जो थोपता मत हो औरों पर, इंसान नहीं वह हो सकता।
गुमराह करे जो लोगों को, भावना अरु आस्था के बल पर,
आत्ममंथन करने न दे सबको, इंसान नहीं वह हो सकता।
सबके अन्दर बसती वह शक्ति, सही गलत का जो करती निर्णय।
करता नजरअंदाज जो है इसको, इंसान नहीं वह हो सकता।
जीवन का क्या है छिपा अर्थ, करना चाहिए सबको चिन्तन,
बँधता विचार जो सीमा में, इंसान नहीं वह हो सकता।
मानव में भेद हैं तो केवल, अच्छाई और बुराई का।
लिंग भेद को भी जो भेद कहे, इंसान नहीं वह हो सकता।
नारी नर के संवेग भाव, में संकुल कोई भेद नहीं,
अनुभूति न जो यह कर पाये, इंसान नहीं वह हो सकता॥

13.3.2012

वस्त्र और धर्म

शीत ताप से देह बचसना,
इतना ही नहीं काम हमारा।
कहा वस्त्र ने इसके अलावा,
सौन्दर्य को भी स्वस्थ बनाना।

जब भी मैं सौन्दर्य छिपाता,
हृदय दर्द से तड़फड़ा जाता।
उस पल भी आँखें पथरातीं–
जब सौन्दर्य विलुप्त हो जाता।

देह की करता सदा सुरक्षा,
पर मेरी अपनी जो पीड़ा,
मुखर नहीं मुझसे हो पाती,
सुलग सुलग रहती मुझे खाती।

इसलिये तो ऋतु बसन्त की,
करता रहता सदा प्रतीक्षा,
सुनी मेरी अब तुम भी सुनाओ,
अन्तरमन की अपनी इच्छा।।

कहा धर्म ने सुनो वस्त्र अब,
वेदना कहता हूँ निज मन की।
तन हित जो दायित्व तुम्हारा
आत्मा के प्रति वही हमारा।

वास्तविकता यह किसे दिखायें,
सिमटे हम भी तुम्हारे जैसे,
ढाँप लिया मन्दिर मस्जिद को
पर लोगों के दिलों में सिकुड़े।

हम दोनों का दर्द एक है,
बिडम्बना यह दिखा न पाते,
बुद्धिमान जैसे तुम्हें बनाते,
हम भी विवश पहनते जाते।

वे चुप जो पहचाने मुझको
कहें तो बेमौत मारे जायें,
रोता मित्र मैं इस कारण हूँ
लोग हमें तुम्हें समझ न पाये।

15.3.2012

नवल एक प्रभात

छिपा रही हो किसलिये, तुम अपनी पहचान।
जो जाने खुद को नहीं, होता वह नादान।।
उलझा हूँ कई दिनों से, क्या तुममे रहा खोज।
तुम्हें देख इस भेष में, सोच रहे मुझे नोच।।
अर्थ लगा पाया नहीं कहे जो तुमने शब्द।
कुछ पल के ही वास्ते हो गया उसमें बद्ध।।
भावों ने मेरे हृदय को, कर दिया बहुत अधीर।
चाहा तुम से जान लूँ, क्या असली तस्वीर।।
वैसे तो मुझे ज्ञात है तेरे उर का हाल।
सागर रँगने से कभी, हो सकता नहीं लाल।।
होता काला लाल न सलिल का है निज धर्म।
छिपा हुआ अंधकार में है जीवन का मर्म।।
जाओगी जिस दिन समझ, तुम मेरी यह बात।
उस दिन होगा जगत में नवल एक प्रभात।।

16.3.2012

आँखों से देखकर के

आँखों से देख करके, तस्वीर यदि बनाऊँ।
आँखों से देखने के, लायक न उसको पाऊँ।।
तस्वीर न बनेगी, यदि बन्द रखूँ आँखें।
तस्वीर है बनाना, तो देखना पड़ेगा।।
जी चाहता है जैसी, तस्वीर को बनाना।
आँखें खुली के जिसको, मुश्किल है देख पाना।।
मुश्किल मगर बनेगी, तस्वीर जो है भाती।
बनाता रहूँगा तब तक, जब तक नहीं बन जाती।।
है कामना तो बस यह वह जान ले मेरे मन की।
यदि मैं सही तो अपनी पहचान सिर्फ दे दो।।
उलझा सही गलत में दलदल में हूँ समाया।
पर इस घुटन में रहकर तस्वीर एक बनाया।।
तस्वीर की हकीकत, यद्यपि कभी न होती।
इसलिये कि हकीकत की ही तस्वीर बनती।
कुछ भी हो पर मेरे मन ने तस्वीर जो बनाया।।
यथार्थ में भी है वह मैं ही न खोज पाया।।
चाहता दिखाना उनको, जो पारखी हैं आँखें।
वे जान लेंगे संकुल, तस्वीर की जो सूरत।।

18.3.2012

प्रयोजन

देखा
उलझ गया
प्रकुल में
सोचों को सींचने लगा
फूट आये अंकुर
अनेक
वृक्ष बना एक।

कल्पना की मर्यादा
कला की सीमा
नहीं बँध सकती
विचारों से।

इसीलिए द्वन्द्व है
क्या मन मेरे जैसा हो जायेगा
अभी तक इस प्रश्न पर
अल्प विराम लगा है
पूर्ण विराम नहीं।

क्या पूर्ण विराम लग पायेगा
नहीं जानता
पर मेरा प्रयास
जब किसी को दिशा देगा
तब लक्ष्य
जिसे मैं नहीं पाया
उसे मिल जायेगा
उस दिन
मेरा प्रयोजन
सफल हो जायेगा।

25.3.2012

खजाना

क्या अपनी मनोज्ञता पर, पुष्प तुम इठला रहे हो,
खेलती तुम से हवा है, क्या इसे सच मानते हो।

भृंग चक्कर काटते हैं, पास में आकर तुम्हारे।
क्या इसीलिए झूमते हो, बाग में सबसे हो न्यारे।।

मत करो पुष्प गर्व इतना, पा लिया तुमने सुरम्यता।
वक्त की बहती धारा में, न कभी सौन्दर्य ठहराता।।

आज ये तितली भ्रमर, गुण गान करते सब तुम्हारा।
कल का क्या सोचा है तुमने है, कौन हमें देगा सहारा।।

जब तुम्हें देगा दिखायी, पुष्प सच क्या है जगत का।
चाहते तो सब तुम्हें, पर प्यार पा सकता न इनका।।

फूल दुर्लभ है बहुत, संसार में इस प्यार पाना।
प्यार से बढ़कर नहीं कुछ और हो सकता खजाना।।

पुष्प जिस दिन जान लोगे, प्यार की क्या है गहरायी।
तब तुम्हें इस रूप से, आगे पड़ेगा भी दिखायी।।

जब महक को जानकर, उपयोग तुम करने लगोगे।
तब हृदय में उतरकर, अपरिवर्तनीय सुन्दर दिखोगे।।

31..3.2012

सचमुच

एक छोटी–सी चिंगारी ने, मेरी कुटिया को जला दिया।
यह राख उसी की पड़ी हुई, इसको मैं फेंक नहीं पाया।।

यह आहट मुझे बताती है, निश्चित एक दिन वह आयेगी।
इस सोच से आँखें भीग गयीं, लगता जैसे बरसात हुई।।

ये आँखें भी देतीं धोखा, जहाँ तलक दिखायी पड़ता है।
उतनी ही नींव को भर करके, मकान बनाया जाता है।।

आकृति के बादल से पानी, की मिटी अभी उम्मीद नहीं।
इसलिये तो जो दिखलाता है होता उस पर एतबार नहीं।।

क्या पता इसीलिये बार–बार, दीपक के पास मैं आता हूँ।
यह खेल समझ से बाहर का, बस केवल जी बहलाता हूँ।।

हाँ इतना तो मैं जान गया, रोशनी काम में आती है।
बाकी सब कुछ पल का सुख है, बुद्धि इसे पकड़ न पाती है।।

जब स्वप्न कभी टकरा जाते, संसार की किसी भी आकृति में,
तब यूँ लगता जैसे वह है जिसको मैं खोजा करता हूँ।।

वह धरती पर नहीं हो सकती, भ्रमवश मैं ऐसा करता हूँ।
भ्रम सही मगर यह भी सच है, मैं याद उसी की करता हूँ।।

क्या पता मुझे इस जीवन में, सचमुच वह एक दिन मिल जाये।
अब इसी आश में जीता हूँ, जीते जी बन्धन खुल जाये।।

❑❑❑

उससे

मैं मानव पर मानव बनकर जीना ही नहीं मुझको आया।
किसको बतलाऊँ अपनी बात, अब तलक न कोई मिल पाया।।
जब भी मेरे मन ने चाहा, मैं बात कहूँ उससे अपनी।
कुछ देर पास उसके बैठूँ, जानूँ उसके दिल की अपनी।।

आँखों पर पड़ा हुआ पर्दा उसके मैं नहीं हटा पाया।
पर्दा तेरी पहचान नहीं, यह बोध न उसे करा पाया।।
यह कैसा है संसार यहाँ बस पर्दा ही दिखलाता है।
इस पर्दे को भी तरह–तरह, रंगों से रँगा जाता है।।

कैसी यह घोर बिडंबना है, कहते मेरा पर्दा असली है।
दूसरे और रंग के पर्दों की चिल्लाते कि नकली है।
असली नकली के द्वन्द्वों में हम उलझ उलझ कर लड़ते हैं
झुठलाते सत्य जो है प्रत्यक्ष कृत्रिमता कर बदल देते हैं।।

इससे बढ़कर दुर्भाग्य और कुछ नहीं जगत में दिखलाया।
मानव न बना अब तक मानव, बिखरा वर्गों में नजर आया।।
इन वर्ग समूहों में फँसकर, इन्हें असली रंग समझता है।
जो असली रंग रुधिर का है, अनदेखी उसकी करता है।।

यह भी न बात मैं कह सकता उससे जो मेरा नाता है।
क्योंकि अपने–अपने ढंग से यह अर्थ लगाया जाता है।।
लेकिन जब उसे देखता हूँ जो मेरे मन में आता है।
क्या वह भी यही सोचती है, यह प्रश्न खड़ा हो जाता है।।

इस प्रश्न का दे पाना उत्तर है मेरे बस की बात नहीं।
पर नारी भी तो मानव है क्या इसमें भी संदेह कहीं॥

हर मानव को मानव की तरह जीने का हक मिलना चाहिए।
इस धर्म जाति के पर्दे को अब चेहरों से हटना चाहिए॥

सबमें होता ईश्वर का अंश फिर भेद कहाँ से आता है।
धरती वालों इन वर्गों से तुम्हें सत्य नहीं मिल सकता है॥
अपनी प्रतिभा से अपना ज्ञान जो यहाँ बढ़ा ले जाता है।
सारे द्वन्द्वों से होकर मुक्त सच्चा प्राणी बन जाता है॥

'संकुल' को आश भारतवासी इक दिन यह कर दिखलायेगा।
नारी नर में न होगा भेद कोई वर्ग नहीं रह जायेगा॥
जब धर्म जाति से नहीं मानव का मानव से होगा नाता।
उस दिन मैं भी बतला दूँगा, जो देख उसे मन में आता।।

16.02.2012

पहचान

लिबास बदलकर
दे दिया जाता है
नाम
जिसे पहने कट जाता है
जीवन,
लिबास से लिपटी जिन्दगी
चिन्ता या चिन्तन करती है
सिर्फ लिबास की
भूल जाती वास्तविकता
देह की
कोशिश है लिबास उतार दूँ
तब तुम मुझे किस नाम से पुकारोगी
सोचना
इस सोच में उलझकर
विचार
सत्य भले न छू पाये
पर पहचान
जो तुमने भेष से बनायी है
भ्रामक लगेगी
तब बनेंगे
मन में कोण
न्यून सम अधिक
360^0 में घूमने से श्रेष्ठ है
जानना
मात्र बिन्दु
जो सभी कोणों का निर्माण करता है।

13.07.2012

पीड़ा

बीस बालकों की हत्या
बस में युवती से सामूहिक बलात्कार
पोलियो कार्यकर्त्ता छः महिलाओं की हत्या
ईश–निन्दक का सामूहिक दहन
किसी देश की समस्या नहीं
पीड़ा है उस आदमी की
जो आदमी की तरह जीना चाहता है
देह की पीड़ा को कम करती दवा
संवेदना एहसास कराती पर–पीड़ा
जो मार रहे संवेदना
क्या दूँ नाम?
मरे नहीं संवेदना
यह कार्य कर सकते वे
जिसके पास है हृदय
विरोध करें जो गलत है
सीख लें, उड़ते हुए खगों से
कैसे बँधे हैं नीड़ से
अपने लिये जीते जो
सिमट जाता सुख पॉकेट में
दूसरों के लिए जीने वालों का सुख
बिखरकर लकीर बन जाता
–जल नाम अनेक हैं
गुण एक है
मानव भी मानव है
यह सत्य स्वीकारें
धर्म–जाति–सीमा मनुष्य ने बनाये
जो ईश्वर को जानते
वे बन्धनों से मुक्त हो जाते।

23.12.2012

पंखुड़ी

पंखुड़ी फूल की फूल–सी तो नहीं
फूल की याद लेकिन दिला देती है
पैर थक जायें फिर भी ठहरिये नहीं
आगे बढ़ने का साहस बढ़ा देती है।।

मेरे अन्तस में मंथन करा देती है
पंखुड़ी जब कभी तू नजर आती है
एक निर्णय पे यद्यपि कायम रहा
भाव में भव्यता पर निखर आती है।।

फिर भी यह जान लेना जरूरी बहुत,
पंखुड़ी वस्तुतः किसलिए भाती है।
दिख रही जिस तरह वह न होती कभी
रंग मेंहदी बहुत देर में लाती है।

यह रहस्य जान लेना यद्यपि है कठिन
फिर भी चलना अँधेरे में उपयुक्त नहीं
हम गिरे गम मनायें न इस बात का
रोशनी खोजें आगे गिरे फिर नहीं

मत मेरा यह नहीं सिर्फ अनुभव है ये
दीप छू करके मिलती है केवल जलन
इसलिए प्रश्न अब सामने है खड़ा
क्या पता फूल ही दे मिटा ही जलन।।

25.07.2012

निश्चित

किसी की याद के धागे, में मैंने ये गुथे मोती।
ये असली हैं या नकली हैं, बता तो यह वही सकती।
नहीं वह मिल सकी मुझको, सदा यह दुःख सताता है।
इसीलिये यह पथिक कभी–कभी, रास्ता भूल जाता है।

चाह सच्ची वही मिटती, वह दबती पर सुलगती है।
राख में दिखती चिंगारी, हवा जब आकर छूती है।।
अगर यह भ्रम तो इस भ्रम में, चाहता नींद आ जाये।
हकीकत में जो न संभव, स्वप्न में ही वह मिल जाये।।

चाह तब जन्म ले लेती, जब सर लालच उठाती है।
पास में वस्तु आकर भी, पास में रह न पाती है।।
यद्यपि यह होता स्वाभाविक, मगर फिर भी मुझे लगता।
निखारता जो सदा गुण को, प्यार उनका नहीं घटता।।

यह भी सच वस्तु अरु व्यक्ति का, वाह्य रूप ही लुभाता है।
मगर यह देह आकर्षण, वक्त के साथ घटता है।।
जगत में कुछ नहीं स्थिर, तो क्या बहते यूँ ही जायें।
या कोई दिशा निश्चित कर, जहाँ चाहें वहाँ जायें।।

18.10.2012